'बाबल तेरा देस में' और लोक जीवन

एम.फिल. हिन्दी उपाधि हेतु प्रस्तुत लघु शोध–प्रबन्ध

शोध–निर्देशक
डॉ. ओमप्रकाश सिंह

शोध–छात्र
वीरेन्द्र सिंह

भारतीय भाषा केन्द्र
भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अध्ययन संस्थान
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली–110067

2006–07

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY
CENTRE OF INDIAN LANGUAGES
SCHOOL OF LANGUAGE, LITERATURE & CULTURE STUDIES
NEW DELHI-110 067, INDIA

Dated 05 /01 / 2007

DECLARATION

I declare that the work done in this dissertation entitle "BABAL TERA DES MAIN AUR LOK JEEVAN (FOLK LIFE AND BABAL TERA DES MAIN)" by me is an original work and has not been previously submitted for any other degree in this or any other University/ Institution.

VIRENDRA SINGH
(Research Scholar)

DR. OMPRAKSH SINGH
(SUPERVISOR)
CIL/SLL&CS/JNU

PROF. MOHD. SHAHID HUSAIN
(CHAIRPERSON)
CIL/SLL&CS/JNU

शायरों, शूरवीरों, शहीदों

और

सामासिक संस्कृति की धरती मेवात को .....

विषयानुक्रमणिका

पृष्ठ संख्या

भूमिका I-IV

प्रथम अध्याय 1 – 37

भगवान दास मोरवाल की साहित्यिक यात्रा और 'बाबल तेरा देस में'

(i) भगवान दास मोरवाल : संक्षिप्त परिचय

(ii) मेवात समाज की भौगोलिक, सामाजिक व सांस्कृतिक संरचना

(iii) भगवान दास मोरवाल का साहित्य

(अ) कहानी

(ब) उपन्यास

(iv) 'बाबल तेरा देस में'

द्वितीय अध्याय 38 – 82

'बाबल तेरा देस में' और मेवाती लोकजीवन के विविध पक्ष

(i) लोक का अभिप्राय

(ii) उपन्यास और लोकजीवन

(iii) 'बाबल तेरा देस में' और मेवाती लोकजीवन के विविध पक्ष

- मेवात की संश्लिष्ट व यौगिक सामाजिक संरचना
- मेवात के मेले (उर्स) व तीज–त्योहार
- मेवात के विवाह आदि संस्कार
- मेवात के धार्मिक रीति–रिवाज, पूजापाठ व सामाजिक परम्पराएँ
- मेवात के लोक गीत
- मेवाती लोकवार्ताएँ व किस्से
- मेवाती दोहा परम्परा
- मेवाती पहेलियाँ
- मेवाती कहावतें एवं मुहावरे
- मेवाती लोकजीवन की भाषा

तृतीय अध्याय 83 — 116

मेवाती जीवन की समस्याओं के परिप्रेक्ष्य में 'बाबल तेरा देस में' का मूल्यांकन

(i) सामाजिक बुराइयां और 'बाबल तेरा देस में'

(अ) जाति प्रथा (छुआछूत)

(ब) अन्धविश्वास

(स) बाल विवाह एवं दहेज प्रथा

(द) जनसंख्या वृद्धि

(य) आधारभूत सुविधाओं का अभाव (शिक्षा, चिकित्सा, यातायात, पेयजल)

(ii) नारी समस्या और 'बाबल तेरा देस में'

(iii) मेवात में सामासिक संस्कृति की टूटती कड़ियाँ और 'बाबल तेरा देस में'

(iv) मेव समुदाय और उनकी अस्मिता का प्रश्न

उपसंहार 117 — 121

संदर्भ—ग्रंथ—सूची 122 — 125

.....

भूमिका

साहित्य पढ़ने से दो तरह के लाभ पर तुरन्त ध्यान जाता है। पहला लाभ तो यह है कि जिन्हें हम पहले से जानते हैं, उन्हें नए तरह से जानने का अवसर मिलता है और दूसरा लाभ यह है कि जिन्हें हम नहीं जानते, उनसे भी हमारा आत्मीय परिचय हो जाता है। 'बाबल तेरा देस में' भगवानदास मोरवाल का मेवाती जन जीवन को आधार बनाकर लिखा गया दूसरा उपन्यास है। इसके पहले इसी समाज की पृष्ठभूमि पर 'काला–पहाड़' उपन्यास की रचना कर चुके हैं। 'बाबल तेरा देस में' उपन्यास को पढ़कर मुझे उपर्युक्त दोनो तरह के लाभ हुए। पहला इसलिए कि मेवात क्षेत्र के बहुत नज़दीक (मुण्डावर, अलवर) का होने के कारण इस क्षेत्र को जानते हुए भी उपन्यास के माध्यम से मैंने उसे कुछ ज्यादा जाना तथा दूसरा मेवाती जीवन के कुछ अनजाने पहलुओं को भी मैंने इसी उपन्यास के माध्यम से जाना है।

मेवात समाज अपनी संरचना व जीवन पद्धति में अलग एवं खास है। वैसे तो हर समाज की अपनी विशिष्टता होती है लेकिन मेवाती समाज की बात ही कुछ और है। मेव समाज मध्यकाल में धर्मांतरित होकर मुसलमान बनने वाला शायद आखिरी समुदाय था। यही कारण है कि आज भी इस समुदाय की अधिकांश परम्पराएँ गैर–इस्लामिक बनी हुई हैं। आज जब देश चारों तरफ से साम्प्रदायिकता की आग में झुलस रहा है – गोधरा नरसंहार (2005) और बाबरी मस्जिद विवाद (1992) हो रहा है, तब भी मेवात क्षेत्र में – जो अपनी संरचना में ही जटिल है – पूरी तरह धार्मिक रूप से अमन चैन का माहौल है। आखिर उस समाज की संरचना में ऐसी क्या बात है जिसे बाहरी अवसरवादी सांप्रदायिक ताकतें लाख कोशिश के बाद भी अपनी मुट्ठी में नहीं कर पाई है ? ऐसे समाज को जानने व समझने के प्रति किसकी जिज्ञासा न होगी।

'बाबल तेरा देस में' उपन्यास पर काम करने की मेरी इच्छा इसलिए बढ़ी कि इसमें न केवल मेवाती लोक जीवन का प्रामाणिक व विश्वसनीय चित्र मौजूद है बल्कि मेवात समाज के बहाने सम्पूर्ण भारतीय समाज की – मेवात समाज एक ऐसा समाज है जहाँ नारी दोहरे स्तर पर शोषित है। वाह्य शक्तियों की ही बात नहीं परिवार के सदस्य भी अपने ही घर की नारी के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण नहीं रखते। विशेषकर ग्रामीण समाज की नारियों की समस्या को जड़ से पकड़ा गया है।

मेवात क्षेत्र से मेरा गहरा परिचय रहा है, गहरा परिचय इसलिए कि मैं इसके बहुत नज़दीक का हूँ और इस समाज की सघनता वाली दुनिया ने वहाँ की सामासिक परम्पराएँ और वहाँ की लोक संस्कृति के प्रति प्रभावित रहा हूँ।

आज जब पूरा विश्व एक ग्लोबल गाँव बन गया है ऐसे उत्तर आधुनिक समय में मेवात समाज में आधुनिकता के लक्षण भी मुश्किल से ही मिलेंगे। आखिर क्यों, इस अंतराल के लिए दोषी कौन है, मेवाती समाज या फिर विकास के नाम पर पंचवर्षीय परियोजना चलाने वाले पुरोधा ? ये सवाल मेरे मस्तिष्क में हमेशा से ही उठते रहे हैं जिनके कारण भी मैंने इस उपन्यास के बहाने मेवाती लोक जीवन के पहलुओं पर विचार करने का मानस बनाया।

प्रस्तुत लघु शोध प्रबन्ध में तीन अध्याय हैं – पहले अध्याय का नाम "भगवानदास मोरवाल की साहित्यिक यात्रा व बाबल तेरा देस में" है। इस अध्याय में भगवानदास मोरवाल का संक्षिप्त जीवन परिचय देते हुए उनके साहित्य का विवेचन–विश्लेषण किया गया है। मोरवाल की साहित्यिक यात्रा में पहले उनके कहानी संग्रह 'अस्सी मॉडल उर्फ़ सूबेदार' (सन् 1997 ई.) का विवेचन है, फिर उनके उपन्यास 'काला पहाड़' (1998 ई.) का विवेचन–विश्लेषण है। 'बाबल तेरा देस में' उपन्यास को 'काला पहाड़' व अस्सी मॉडल उर्फ सूबेदार (कहानी संग्रह) के बरक्स रखकर देखने का प्रयास किया गया है।

द्वितीय अध्याय का नाम "बाबल तेरा देस में और मेवाती लोक जीवन के विविध पक्ष" है। इसमें पहले लोक जीवन का अभिप्राय दिया गया है, फिर संक्षिप्त रूप से उपन्यास व लोक जीवन के अन्तःसंबंध की चर्चा की गई है। इसके पश्चात मेवाती लोक जीवन के विविध पक्षों का उनकी विशेषताओं व महत्ताओं सहित विवेचन किया गया है।

मेवात का लोक जीवन अपने आप में अद्भुत है। वहाँ का समाज इतना सुगठित व पारस्परिक घुला–मिला है कि वहाँ के आदमी की पहचान कौम से नहीं बल्कि 'मेवाती' से होती है। उस समाज के तीज–त्योहारों पर किसी धर्म समुदाय का अधिकार नहीं है, बल्कि दोनों ही समुदाय के लोग एक दूसरे के त्योहारों को बिना किसी भेदभाव के मनाते हैं। हसन खाँ मेवाती का किस्सा जिस गर्व से वहाँ के हिन्दू कहते हैं उतनी ही ज्यादा आस्था व श्रद्धा से 'पण्डून का कड़ा' वहाँ के मुस्लिम पढ़ते व देखते हैं। संत लालदास, चूहड़ सिद्ध महाराज के मेलों में दोनो ही समुदाय के लोग समान आदर व विश्वास के साथ जाते

हैं। अन्य समाजों की तरह मेवात का समाज भी विविध लोकगीतों और लोकवार्ताओं, पहेलियों, दोहों व शायरी से समन्वित है, इस अध्याय में मेवाती समाज के इस पक्ष की तरफ भी विशेष ध्यान देते हुए उपन्यास में प्रयुक्त ऐसी रचनाओं पर भी बातचीत की गई है।

तृतीय अध्याय का शीर्षक 'मेवाती जीवन की समस्याओं के परिप्रेक्ष्य में "बाबल तेरा देस में का मूल्यांकन" है। इस अध्याय में उपन्यास में अभिव्यक्त मेवाती लोक जीवन के विविध पक्षों और उनसे जुड़ी समस्याओं का विवेचन है। साथ ही साथ मेवाती जीवन के विविध पक्षों के विवेचन–विश्लेषण के बहाने सम्पूर्ण भारत की ग्रामीण स्त्रियों (विशेषकर मुस्लिम स्त्रियों) व भारत के गाँवों की समस्याओं को भी यहाँ रेखांकित करने का प्रयास किया गया है।

अध्ययन से प्राप्त निष्कर्षों को 'उपसंहार' शीर्षक के अंतर्गत अंत में रखा गया है।

इस कार्य के सम्पन्न होने में गुरु की क्या भूमिका रही है उसे शब्दों के माध्यम से बताना व आभार प्रकट करना मुश्किल ही नहीं, बल्कि नामुमकिन है। गुरु की अपेक्षाओं पर भविष्य में पूरा उतर कर ही गुरु का ऋण चुकाया जा सकता है, इससे इतर मार्ग मैं दूसरा नहीं जानता। किन्तु इस कार्य को इतनी जल्दी सुचारू ढंग से सम्पन्न कराने के लिए गुरुवर डॉ. ओमप्रकाश सिंह के दृष्टि सम्पन्न मार्ग निर्देशन के प्रति कृतज्ञता प्रकट करना मुझे अनिवार्य प्रतीत हो रहा है। अन्यथा यह शोध–प्रबन्ध इस रूप में कतई असंभव था। अतः इस शोध की अच्छाइयाँ गुरुजी की व जो न बन सका है – वह मेरा है।

'बाबल तेरा देस में' के लेखक भगवानदास मोरवाल का मैं हृदय से आभारी हूँ जिन्होंने न केवल मुझे समय समय पर मेवाती समाज के बारे में अवगत कराया, बल्कि उपन्यास को समझने की एक दृष्टि भी दी। साथ ही उन्होंने अपनी कहानी संग्रह व उपन्यासों से संबंधित समीक्षाएँ भी उपलब्ध कराई। जिससे शोध में न केवल व्यापकता आई बल्कि शोध में आसानी भी रही।

ज.ने.वि. पुस्तकालय, साहित्य अकादमी पुस्तकालय, मारवाड़ी पुस्तकालय के स्टाफ से मिला सहयोग शोध को समृद्ध बनाने में काफी महत्वपूर्ण रहा। विश्वविद्यालय परिसर के अपने उन मित्रों का मैं हृदय से आभारी हूँ जिन्होंने प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से मुझे शोध में सहायता प्रदान की।

परिवार के सहयोग व शुभकामना के बिना यह शोध असंभव था। माताजी–पिताजी के स्नेह व आशीर्वाद का संबल हमेशा मेरे साथ रहता है। बड़े भैया–भाभी व दोनों दीदीयों का प्यार मुझे हमेशा मिला जिससे मैं शोध में एकाग्रचित हो सका।

और अन्त में, उस असीम सत्ता के प्रति नतमस्तक होकर कृतज्ञता प्रकट करता हूँ जिसने मुझे शोध के लायक बनाया।

– वीरेन्द्र सिंह

अध्याय – एक

भगवान दास मोरवाल की साहित्यिक यात्रा और 'बाबल तेरा देस में'

(i) भगवानदास मोरवाल का संक्षिप्त जीवन परिचय

(ii) मेवात की भौगोलिक, सामाजिक व सांस्कृतिक संरचना

(iii) भगवान मोरवाल का साहित्य

(अ) कहानी संग्रह – अस्सी मॉडल उर्फ सूबेदार

(ब) उपन्यास साहित्य – काला पहाड़

(iv) 'बाबल तेरा देस में'

हिन्दी उपन्यास लेखन की शुरूआत उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुई। प्रारम्भिक दौर के उपन्यासों में जीवन के व्यापक अनुभवों के अंकन का अभाव था। जैसे–जैसे उपन्यास साहित्य विकसित होता गया उनमें जीवनानुभवों की अभिव्यक्ति सजग होती गई। धीरे–धीरे किसान व अंचल विशेष भी भारतीय उपन्यासों के आधार बनने लगे। हिन्दी में किसान का ठीक से आना प्रेमचन्द के उपन्यासों द्वारा संभव हुआ, तो अंचल का यथार्थ चित्रण फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यासों द्वारा। प्रो. मैनेजर पाण्डेय ने लिखा है – "भारतीय उपन्यास में किसान आया तो उसके साथ वह अपनी स्वीकृति, भाषा और कथन भंगिमाऐं भी लेकर आया जिससे उपन्यास का नया यथार्थवादी रूप निखरा। तभी उपन्यास जन जीवन का आख्यान बना।"[1] प्रेमचन्द के बाद हिन्दी उपन्यास विविध धाराओं में आगे बढ़ा। हिन्दी उपन्यास के ठीक से स्थापित हो जाने के बाद उपन्यासकारों का ध्यान जीवन की अन्य समस्याओं की ओर गया। फणीश्वरनाथ रेणु, नागार्जुन, अज्ञेय, हजारीप्रसाद द्विवेदी, शिवप्रसाद सिंह आदि के उपन्यासों में जीवन के विविध पक्षों की अभिव्यक्ति हुई। जीवन के विविध पक्षों का चित्रण करते हुए हिन्दी उपन्यासकारों ने अपना ध्यान किसी क्षेत्र विशेष के चित्रण पर भी लगाया और उसको अपने उपन्यास का आधार बनाया। हिन्दी के आंचलिक उपन्यास इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। हाल के वर्षों में किसी (क्षेत्र विशेष) अंचल के जनजीवन को आधार बनाकर लिखे गए उपन्यासों में उपन्यासकार भगवान दास मोरवाल का उपन्यास 'बाबल तेरा देस में' महत्त्वपूर्ण व उल्लेखनीय है।

(i) भगवान दास मोरवाल का संक्षिप्त परिचय –

भगवान दास मोरवाल का जन्म 23 जनवरी, 1960 को जिला गुड़गाँव (दक्षिण हरियाणा) के काला पानी कहे जाने वाले मेवात के छोटे से कस्बे नगीना के एक मज़दूर परिवार में हुआ।

इनकी प्रारम्भिक शिक्षा अपने इसी पैतृक कस्बे तथा नूंह के यासीन मेव डिग्री कॉलेज से सम्पन्न हुई। आपने एम.ए. (हिन्दी) एवं पत्रकारिता में डिप्लोमा राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर से किया। इसी दौरान मोरवाल ने लगभग आठ वर्षों तक स्वतंत्र

पत्रकारिता एवं लेखन कार्य भी किया। वर्तमान में केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड की हिन्दी यूनिट में सहायक निर्देशक पद पर कार्यरत श्री मोरवाल निरंतर साहित्य रचना कर रहे हैं। साहित्यिक कृतियाँ – मोरवाल ने अपनी साहित्य यात्रा कहानी लेखन से शुरू की थी। इनके दो उपन्यास – (1) काला पहाड़, (2) बाबल तेरा देस में, विशेष चर्चित हुए। इनके कहानी संग्रह हैं – अस्सी माडल उर्फ सूबेदार, सूर्यास्त से पहले, सिला हुआ आदमी। एक कविता संग्रह – 'दोपहरी चुप है' है। बच्चों के लिए 'कलियुगी पंचायत' व दो सम्पादित पुस्तक – इक्कीस श्रेष्ठ कहानियाँ एवं हिन्दी की श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाऐं हैं।

सम्मान एवं पुरस्कार –

भगवान दास मोरवाल को अपनी छोटी सी साहित्यक यात्रा में अनेक सम्मान पाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। हिन्दी अकादमी, दिल्ली द्वारा 'साहित्यकार सम्मान', दो बार 'साहित्यिक कृति सम्मान', भारतीय दलित साहित्य अकादमी द्वारा 'डॉ. अम्बेडकर फ़ैलोशिप पुरस्कार' व कहानी रंग–अबीर के लिए 'राजाजी पुरस्कार' भी प्राप्त हुआ। हाल ही में 'बाबल तेरा देस में' उपन्यास पर 'कथाक्रम' सम्मान भी इन्हें प्राप्त हुआ।

भगवान दास मोरवाल के साहित्य का आधार अधिकतर मेवात समाज रहा है। चूंकि मोरवाल के जीवन की पृष्ठभूमि मेवात से संबंधित है, इसलिए उन्होंने अपनी कहानियों व उपन्यास का कथानक भी उसी मेवात समाज को बनाया जहां वे पले–बढ़े हैं। लेखक मेवाती समाज के सामाजिक सांस्कृतिक परिवेश को ज्यादा गहराई व चित्रकारी के साथ अपने कथा साहित्य में उभारता है। अतः आवश्यक है कि उनके साहित्य पर चर्चा करने से पहले मेवात समाज की सामाजिक सांस्कृतिक संरचना पर हल्की चर्चा कर लेना प्रासंगिक होगा।

(ii) मेवात समाज की भौगोलिक, सामाजिक व सांस्कृतिक संरचना –

मेवात क्षेत्र राजस्थान, हरियाणा व उत्तर प्रदेश का सीमान्त क्षेत्र है। यह दिल्ली के दक्षिण में गुड़गाँव तथा सोहना से शुरू होता है। सोहना से शुरू होकर इसकी सीमा तावडू, भिवाडी, टपूकड़ा, तिजारा, किशनगढ़, खैरथल, जीन्दोली की घाटी, चान्दोली,

धोली–दूब, विजयमन्दिर, अलवर, उमरैण, अकबर पुर, कठूमर, तसईनगर, डीग, कांमा, कोसी, होडल, पलवल, वल्लभगढ़ होते हुए फिर सोहना से जा मिलती है। यदि मेवात की भौगोलिक संरचना को देखना हो तो डॉ. महावीर प्रसाद शर्मा द्वारा दर्शाया गया मेवात का निम्न मानचित्र हमारी सहायता करेगा

मेवात का मानचित्र

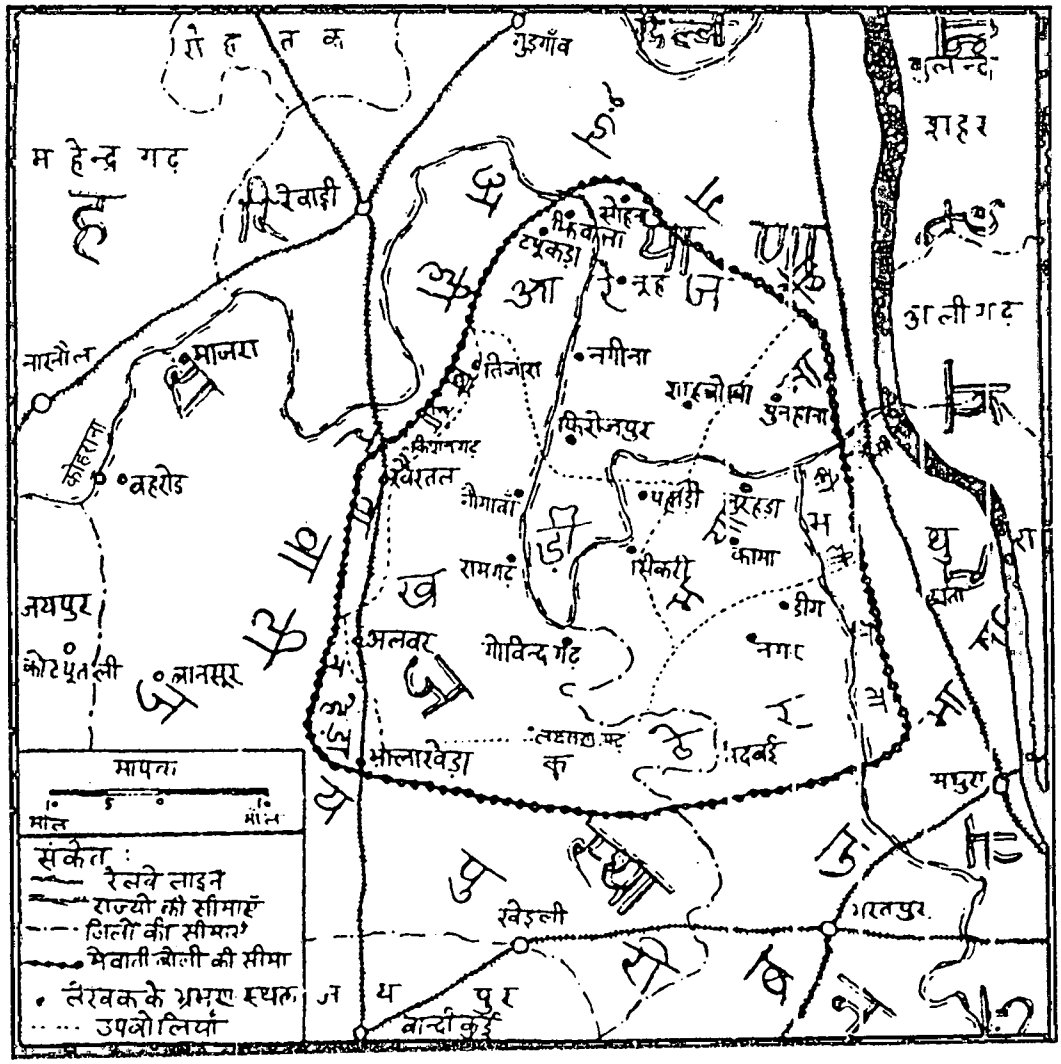

लार्ड सन्नू खाँ मेव, जो अलवर के निवासी और 'चिराग–ए–मेवात' के सम्पादक हैं, ने मेवात क्षेत्र की भौगोलिक स्थिति को एक दोहे के माध्यम से इस प्रकार बताया है –

"दिल्ली, मथुरा, आगरा, बयानो रे बैराठ
बीच मुलक मेवात है पच्छिम अलवर राठ।।"[2]

अब चारों ओर से मेवात की सीमायें सिकुड़ गई हैं। एक तरफ से यह सीमा रेवाड़ी से भिवाड़ी और गुड़गाँव से सोहना तक ही रह गई है। दूसरी तरफ इसकी सीमा पलवल से हथीन, मथुरा से गोवर्धन, आगरा बयाना से कठूमर और बैराठ से अकबर पुर तक आ गई है। इस सीमा संकुचन पर चिन्ता व्यक्त करते हुए एक कवि ने लिखा है –

"चारू घां सू सुकड़ती जा री है मेवात।
सब भीतर कू भग रहा कितना उलटी बात।।"[3]

मेवात का मानचित्र में दर्शाया क्षेत्र अरावली पर्वतमाला की तराई में फैला है – "जो उत्तर से दक्षिण तक लगभग 100 मील, पूर्व से पश्चिम तक लगभग 75 मील लम्बा है।"[4]

मेवात क्षेत्र में मेव आबादी बहुसंख्यक है। ये इस्लाम धर्मावलम्बी है। बहुत सी हिन्दू जातियां जैसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, जाट, अहीर, गूजर, सैनी, जाटव, पंजाबी, जोगी, सुनार, कुम्हार, नाई, धोबी, मीरासी आदि भी यहाँ निवास करती हैं। मेवात क्षेत्र हरियाणा, राजस्थान व उत्तर प्रदेश में फैला हुआ होने पर भी इस क्षेत्र की संस्कृति का अपना एक स्वायत्त चरित्र मौजद हैं इस क्षेत्र की बोली–बानी, आचार–विचार, रहन–सहन, जीवन शैली ने इसकी चिन्तन परम्परा को एक ऐसा स्वरूप प्रदान किया है कि यहाँ का आदमी आज तक बहुत कम मजहबी कट्टरता का शिकार हुआ है। इस सन्दर्भ में सुधीश पचौरी ने लिखा है – "हिन्दी की नागर कथाओं में जो अजनबीपन मिलता है यहाँ उसके उलट एक जबरदस्त सघनता वाली दुनिया है जहाँ एक घर दूसरे से हमेशा लेने देने में व्यस्त है; यहां किसी का काम अकेले नहीं होता, जहां विचित्र सामासिकता है, नेग, छोछक, शादी ब्याह, सगाई, मौत, उत्सव सबके हैं। सबके दरवाजे सबके लिए खुले हैं। कोई 'निजता' नहीं है क्योंकि जीवन सामूहिक और सामुदायिक है। मेवात का यह मॉडल हमारे बीच अभी तक बची पुरानी कृषक–सामूहिकता का दुलर्भ नमूना है।"[5]

मेवात समाज की मेव आबादी इस्लाम धर्मावलम्बी है लेकिन वे अपने–आपको

हिन्दू कहलवाना पसन्द करते हैं और न ही मुसलमान। वे सिर्फ और सिर्फ 'मेव' हैं और मेव ही कहलवाना पसन्द करते हैं 'जाट को कहा हिन्दू और मेव को कहा मुसलमान' उनकी चर्चित लोकोक्ति है।

मेव जाति के इतिहास के बारे में उपन्यासकार 'काला पहाड़' में विस्तार से चर्चा करता है। "अपने मुल्क में हिन्दुओं से इस्लाम कुबूल करने वाले शायद ये आखिरी हिन्दू है। ... मेवाड़ इनकी पहली जगह है जहां ये रहते थे। शायद इन्हीं लोगों के वहां रहने से इस इलाके का नाम मेवाड़ पड़ा होगा। 'मेवाड़' का एक हिस्सा आज भी 'मेवल' कहलाता है। वास्तव में मेव शब्द का असली मतलब होता है 'पहाड़ी' जो इस कौम के मूल और मेवाड़ की खासियतों की ओर इशारा करती है। महाभारत में भी 'मेद' और 'जूट' दो क्षत्रिय कौमों का जिक्र मिलता है। अरबी जुबान में लिखी गई महाभारत की कुछ ओरिजनल मैन्यूस्क्रिप्ट्स से इस तथ्य की जानकारी मिलती है कि 'मेद' का 'द' हरफ आगे चलकर गायब हो गया और 'मेद' की जगह पर कुछ अरसे बाद 'मेव' बन गया। कुछ लोगों का यह भी मानना है कि मेवाड़ के भीलों और गूजरों नेमेवों को वहाँ से खदेड़ दिया था और ये मेवात में आकर बस गए। दरअसल इस इलाके का नाम मेवों के नाम पर ही पड़ा। मेवों को क्रिमिनल ट्राइब्स भी इसीलिए कहा गया है कि इन्हें मेवाड़ से खदेड़ा गया। मेवों का जिक्र 'मेड़' ट्राइब्स की शक्ल में भी मिलता है, जिसके नाम पर कुछ हिन्दुस्तानी इलाके मेड़पात, मेवाड़ और मेवात कहलाए।"[6]

वास्तविकता यह है कि मेव एक पुरानी क्षत्रिय कौम है, जिसने बाद में इस्लाम कुबूल कर लिया था। अधिकतर इतिहासकार यही मानते हैं कि मेवों के पूर्वज चन्दर वंशी व सूरजवंशी राजपूत थे जो तोमर, चौहान, राठौड़ और यादव के नाम से जाने जाते थे। कुछ, मेवों को खासकर राजपूतों की तीन शाखाओं यानी वंशो और पालों की बाहर उपशाखाओं से जोड़ते हैं। ये शाखाएँ हैं – यादव, तोमर, कछवाह।

मेव कोम 12 पालों तथा बावन गौतों में बंटी हुई है, जिसे 'बारह–बावन' कहा जाता है। मेवों में एक तेरहवीं पाल भी है, जिसे पल्ला कड़ा कहा जाता है। "दिलचस्प बात यह है कि मेवों में 25 गौत ऐसे हैं जो न केवल जाटों, राजपूतों तथा चमारों से मिलते हैं, बल्कि इन नामों के कबीले प्राचीन ईरानी तथा मध्य एशियाई व चीनी इतिहास में भी पाए जाते हैं।"[7] बारह पालों में कुछ खास पाल है – छिरकलौत, डेमरोत, धूलोट, दंहगल,

बाघोरिया, गौरवाल आदि है। "कहा जाता है कि मेवों के 12 पालों में से पांच पालों ने, जो कि यादव से संबंध रखते थे, और जो चन्दरवंशी कहलाते थे सैयद सालार मसूद गाजी के वक्त इस्लाम कुबूल कर लिया था। और बाकि के सात पालों ने, जो कि सूरजवंशी राजपूतों से ताल्लुक रखते थे बलबन के वक्त इस्लाम कुबूल कर लिया था। इससे पहले कुतुबुद्दीन ऐबक के वक्त भी बहुत से मेवों ने इस्लाम कुबूल कर लिया था।"[8]

मेव जाति के स्वभाव व चारित्रिक गुणों की अगर हम बात करें तो मेव बहुत इमोशनल और सेंटिमेंटल होते हैं। सिद्दीक अहमद मेव इनके स्वभाव के बारे में बताते हुए लिखते हैं "स्वभाव से निश्छल और भोला, दीनों और असहायों पर अकारण ही दया करने वाले, निष्पाप और अटल विश्वासी मेवों का चरित्र पुराने एंग्लों–सैक्शन तथा रोमनों से मिलता जुलता है।"[9] मेवों के इस निश्छल स्वभाव के कारण ही बाहरी लोग (राजनीतिक) इनका अपने स्वार्थ के लिए उपयोग करते आ रहे हैं। मेव एक बहादुर कौम है वीरता इनके स्वभाव का खास गुण है। इनकी वीरता की प्रशंसा में गांधी जी ने 1933 ई. में बिहार के चम्पारण कांग्रेस अधिवेशन में कहा था "अगर मेव कौम जैसी बहादुरी, हिम्मत और देशभक्ति पूरे देश में पैदा हो जाए तो मैं चौबीस घंटे में भारत को आजाद करा सकता हूँ। यही कारण है कि मेवों की बहादुरी व देशभक्ति से प्रभावित होकर गांधी जी ने 1947 ई. के विभाजन के दौरान मेवों को पाकिस्तान जाने से रोक दिया था।

1527 ई. के खानवा के युद्ध में बाबर के खिलाफ राणा साँगा का साथ देने वाले हसन खाँ मेवाती को मेवात के लोग अपना नायक मानते हैं जो इनके वीर स्वभाव के अनुकूल ही है। यहाँ तक कि 1857 से 1947 तक के आन्दोलनों पर नज़र डालें तो इन आन्दोलनों में मेवों ने बढ़ चढ़ कर भाग लिया। इतिहास पर एक नज़र डालें तो "सोमनाथ आक्रमण के समय महमूद गजनवी से मेवों की टक्कर, अजमेर के निकट मुहम्मद गौरी का विरोध, कुतुबुद्दीन, इल्तुतमिश, नासिरूद्दीन, मेहमूद तथा बलबन के विरूद्ध मेवों का संघर्ष एवं बाबर के विरूद्ध राणा साँगा का साथ देना, (वीरता के साथ) इस बात का भी प्रमाण है कि मेव कभी धर्म के लिए नहीं बल्कि मातृभूमि की रक्षा एवं गौरव के लिए संघर्ष करते रहे हैं।"[10]

आज भी मेवों की दृष्टि में धर्म या सम्प्रदाय उतना ही महत्त्वपूर्ण नहीं है जितनी मानवता। यही कारण है कि फिरका परस्त ताकतों को उस क्षेत्र में अगर कोई चिन्ता है तो यही कि यहां किस तरह अधिक से अधिक 'इस्लाम की तालीम' दी जाए। इन 'फिरका

परस्त' ताकतों द्वारा इस्लामी तालीम के द्वारा ही आधुनिक पीढ़ी पुरानी पीढ़ी से एकदम भिन्न संस्कार लिए है तथा ज्यादा धार्मिक (सम्प्रदायवादी) हैं। पुरानी पीढ़ी जहां अपने आपको मुसलमान की बजाय क्षत्रिय कहना–कहलाना ज्यादा पसंद करती है वहीं आधुनिक पीढ़ी का इस विचार के प्रति दृष्टिकोण बदला हुआ है। चूंकि मेवों ने धर्मांतरण किया है इसलिए इनके अधिकांश रीति–रिवाज, परम्पराएँ हिन्दुओं के नज़दीक है। ज़ाहिर है परम्पराएँ एवं रीति–रिवाज एकदम नहीं छूट जाते वे छूटते–छूटते ही छूटते हैं। यही कारण है कि धार्मिक मसलों पर नयी पीढ़ी पुरानी पीढ़ी से ज्यादा संवेदनशील है।

मेवों के ये गुण – सेंटिमेंटल, इमोशनल, धर्म से ज्यादा मानवता को महत्त्व, वीरता आदि ही अभी तक मेवात क्षेत्र में सामासिक संस्कृति को जिन्दा रखने में काम हुए हैं। लेकिन ये गुण कभी–कभी इनके लिए नुकसानदायक भी बन जाते हैं – जैसे राजनीतिक लोग इनका 'इमोशनली एक्सप्लोएटेसन' करते आ रहे हैं तो मेवात क्षेत्र आज भी आधुनिकता का इन्तजार कर रहा है। धर्मांतरित मुसलमान होने के कारण मेवात के बाहर के मुस्लिम लोग इनसे अपना रिश्ता जोड़ने से कतराते हैं।

मेवात में रहनेवाला प्रत्येक व्यक्ति बिना किसी जाति, धर्म अथवा रंग भेद के मेवाती कहलाता है। ये भी मेवाड़ी, मारवाड़ी, गुजराती, राजस्थानी, सिन्धी, मराठी की तरह ही मेवाती कहलाते हैं। यहां तक कि जो लोग मेवात छोड़कर देश के दूसरे शहरों में बस गए हैं वहां भी उनके मोहल्लों का नाम 'मेवाती मोहल्ला' ही है। इसी तरह उत्तर प्रदेश तथा मध्य प्रदेश आदि राज्यों के जिन क्षेत्रों में मेव इकट्ठे हुए हैं, उस क्षेत्र का नाम भी मेवात की तरह ही 'छोटी मेवात' प्रसिद्ध है।

मेवात के आधार पर ही इनकी भाषा का नाम भी 'मेवाती' है। इसमें व्रज, राजस्थानी व हरियाणवी का मिश्रण है चूंकि मेवात क्षेत्र इन भाषावाले राज्यों की सीमा पर स्थित है इसलिए मेवाती भाषा में इन तीनों भाषाओं का मिश्रण होना स्वाभाविक है।

मेवात की धरती साधु–सन्तों की 'बानियों' से सराबोर है। मेवात के लोक कवियों की कविताओं से यहां की संस्कृति फली–फूली है। सूफी कवि भीकजी, संत चरणदास, संत लालदास, कवयित्री सहजोबाई, दयाबाई, संत सादल्ला, जनकवि अलिबख्श हजरत खक्वे, नत्थू ऐवज व दानशाह आदि संत कवियों ने यहाँ उच्च मानवीय जीवन मूल्यों का उपदेश दिया "इन सभी कवियों ने धर्म व जाति से ऊपर उठकर एकेश्वरवाद को

अपनाया। चाहे राम कहो या रहीम एक ही परम तत्व से उपजे हैं।"[12]

मेवात क्षेत्रकी संस्कृति लोगों को अपनी ओर आकृष्ट करती है तो वहां का पिछड़ापन, वहां से लोगों का 'पलायन' भी करा रहा है। उत्तर आधुनिकता के दौर में मेवात क्षेत्र में आधुनिकता के भी लक्षण ढूँढ पाना मुश्किल है। व्यवसाय के नाम पर एकमात्र साधन कृषि है जो केवल वर्षा पर निर्भर है। यातायात के नाम पर केवल सड़क यातायात है, रेलवे की सुविधा का वहां आज भी अभाव है। शिक्षा के नाम पर आज भी साक्षरता दर वहां बहुत कम है, स्त्रियों की शिक्षा में तो आजादी के 60 वर्ष बाद भी नाममात्र का ही सुधार हो पाया है। बिजली संचार, स्वास्थ्य जैसी मूलभूत सेवाओं की भी यहां कमी बनी हुई है।

व्यवसाय व सुविधाओं की कमी के कारण यहां पलायन की समस्या विद्यमान है। गांव के लोग अपनी जमीन–जायदाद बेचकर महानगरों की तरफ रूख कर रहे हैं, जहां वे केवल अपना पेट पालते हैं और नारकीय जीवन जीते हैं। मेवात क्षेत्र के पिछड़ेपन का एक कारण यह हो सकता है कि यह क्षेत्र राजस्थान, हरियाणा व उत्तर प्रदेश का सीमान्त क्षेत्र है जिसके कारण प्रान्तीय सरकार इस पर ध्यान नहीं देती है तथा राजधानी के उतना नजदीक होने पर भी केन्द्रीय सरकार इस क्षेत्र को प्रान्तीय सरकारों के भरोसे ही छोड़कर अपना पिंड छुड़ा लेती है।

(iii) भगवान दास मोरवाल का साहित्य –

(अ) कहानी – अस्सी मॉडल उर्फ सूबेदार (कहानी संग्रह)

भगवान दास मोरवाल ने अपने साहित्य लेखन की शुरूआत कहानियों से की थी। अस्सी मॉडल उर्फ सूबेदार उनका पहला कहानी संग्रह है। उनका यह कहानी संग्रह सन् 1997 में प्रकाशित हुआ। इस कहानी संग्रह की अधिकांश कहानियों की कथावस्तु भी मेवत समाज से ही ली गई हैं। कहानियों के पात्र व भाषा भी मेवाती है। इनकी कहानियाँ ही बाद में लिखे गये उपन्यासों का आधार बनी। लेकिन उपन्यासों में मेवात समाज ज्यादा व्यापक व यथार्थ रूप से मुखर हुआ है।

कहानी संग्रह 'अस्सी मॉडल उर्फ सूबेदार' में कुल नौ कहानियाँ सम्मिलित हैं, जिसमें से प्रारम्भिक कहानियों में मेवात समाज की टूटती–बिखरती परम्पराओं, वहां की

स्थानीय राजनीति द्वारा मन्दिर–मस्जिद के नाम पर फायदा उठाकर अपना उल्लू सीधा करने की चालबाजी व मेवात में हैदराबाद जैसे शहरों से खरीदकर लाई गई स्त्रियों की होने वाली दुर्दशा का जीवन्त व यथार्थ रूप विद्यमान है।

संग्रह की पहली कहानी 'अस्सी मॉडल उर्फ सूबेदार' जिसके आधार पर कहानी संग्रह का नामकरण किया गया है, एक ऐसे अनपढ़, अशिक्षित चरवाहे की कहानी है जो, देश में चल रहे मन्दिर–मस्जिद समस्या का गांव के भोले–भाले लोगों के बीच फायदा उठाकर सरपंच के पद तक पहुंचता है। अस्सी मॉडल का परिचय देते हुए कहानीकार लिखता है "कहते हैं कि यह वही अस्सी मॉडल है जो सन् अस्सी से पहले सूबेदार नाम का सीधा–सादा, अंगूठा टेक चरवाहा था और गांव के ढोर–डँगरों को चराकर अपना जीवनयापन करता था। धीरे–धीरे न जाने कैसे इसको आत्मबोध होने लगा कि वह ढोर डंगरों के साथ कम और गौहर वाली में बने खोखों पर चाय पीने वालों में ज्यादा दिलचस्पी लेने लगा है। जिस दिन उसे यह पता चल जाता कि उसके गांव में या इसके आसपास के किसी गांव में कोई लोकल नेता या विधायक आने वाला है तो उस दिन वह डंगरों के साथ बिलकुल नहीं जाता था।"[13]

धीरे–धीरे अस्सी मॉडल की राजनीति के प्रति यह रूचि उसे गांव में होने वाले ग्राम पंचायत के चुनावों में खड़ा कर देती है। स्थानीय विधायक उसके साथ हैं। अस्सी मॉडल अपनी किस्मत के बल पर पंच का चुनाव जीत जाता है। किस्मत के बल पर इसलिए कि दो उम्मीदवारों को बराबर वोट मिलता है लेकिन टॉस में अस्सी मॉडल विजयी होता है।

धीरे–धीरे अस्सी मॉडल विधायकों के साथ रहते हुए राजनीति के गुर सीखता हुआ सरपंची के चुनाव का नामांकन पत्र भरता है। पूरे गांव में उसकी हार की संभावना होने पर भी अस्सी मॉडल अपने विपक्षी उम्मीदवार से भारी अन्तर से विजयी होता है। विजय का कारण अस्सी मॉडल द्वारा विधायकों आदि से सीखे गए राजनीति के वे गुर रहे जो शायद अन्य विपक्षी लोग सीखने से चूक गए। एक तरफ तो अस्सी मॉडल मेवों (मुसलमानों) का हमदर्द बनकर कहता है "अयोध्या में तो मन्दर होई ना... वहां तो बस मेहजद ही...[14] दूसरी तरफ वह हिन्दुओं से कहता है "...हम तो वा हसन खाँ मेवाती के जाए हैं जाने बाबर के साथ मिलन सू ना कर दी ही बल्कि उल्टो वाने अपने गोती भाई राणा साँगा के साथ मिलके बाबर सू टक्कर ली ही... हम तो चन्दर वंशी है और तिहारो राम ऊ सूरज बंसी... चिन्ता मत

कर अयोध्या में बनेगा तिहारो मन्दर ही।"[15] इतना ही नहीं बल्कि तथाकथित नीची जाति (चूहड़ा) के वोट भी अस्सी मॉडल हजार रूपयों में खरीद लेता है और उसी का आदमी सारे वोट उसके डिब्बे में डाल देता है।

इस प्रकार राजनीति में भी किस प्रकार धर्म–सम्प्रदाय को मुद्दा बनाकर वोट बैंक बनाया जाता है वो कोई अस्सी मॉडल उर्फ सूबेदार से सीखे जो दिखने में जितना 'निपट गँवार' है राजनीति में उतना ही तेज।

'लेकिन...' कहानी हैदराबाद से खरीदकर मेवात में लाई गई स्त्री के दुःख–दर्द की कहानी है। मेवात में खरीदकर लाई गई हैदराबादी स्त्रियों की व्यथा–कथा का हिन्दी साहित्य में शायद पहली बार चित्रण मोरवाल की इसी कहानी में मिलता है। जुम्मे खाँ एक विदुर है जो तीन बच्चों का पिता है लेकिन वह हैदराबाद से आयशा को अपने साथ अविवाहित बताकर ले आता है। गौर करने वाली बात यह है कि आयशा के घरवाले इतने गरीब हैं कि वह जुम्मे खाँ जैसे वृद्ध आदमी से कुछ पैसे लेकर उसका विवाह जुम्मे खाँ के साथ कर देते हैं। इस प्रकार एक तरह से जुम्मे खाँ आयशा को खरीदकर ही अपने साथ लाता है।

आयशा धीरे–धीरे अपने आपको मेवात समाज में ढालने का प्रयास करती है लेकिन वह सफल नहीं हो पाती है। आखिर सफल भी कैसे होती क्योंकि मेवात के मुस्लिम तो हैदराबाद से अलग हैं। वे न तो राख से बर्तन माँजते हैं और न ही स्त्रियां साड़ी पहनती है। आयशा कहती है "आपके यहाँ भी अजीब है... साड़ी पहनती है तो हिन्दुआनी... लिपस्टिक लगाती हैं तो हिन्दुआनी... और राख से बर्तन माँजती है तो बस हिन्दुआनी... यह सब किस हदीस ने कहा है कि हमारी साफ सफाई और ओढ़ना–पहनना दूसरे मजहबों से अलग है।"[16] यहीं से आयशा का विरोध शुरू होता है जिसकी परिणति जुम्मे खाँ द्वारा उसकी निर्ममता पूर्वक पिटाई व उसके बाद आयशा का वापिस हैदराबाद लौटने में होती है।

'महराब' कहानी मेवात समाज की सामासिक संस्कृति की टूटती व बिखरती कड़ियों की ओर हमारा ध्यान खींचती है। आज की युवा पीढ़ी किस तरह अपने धर्म व सम्प्रदाय के प्रति सचेत हो रही है, किस तरह व ज्यादा कट्टर होती जा रही है, इन सभी का चित्रण 'महराब' कहानी में चित्रित किया गया है। इसके साथ ही मेवाती लोक जीवन के पर्व त्यौहारों व लोक विश्वासों को भी कहानीकार गहराई से इस कहानी में पकड़ता है।

मेवात के मेवों (मुसलमानों) में जो गोत्र बचाकर हिन्दुओं की तरह शादी करने की प्रथा है असरूपी का बेटा उसे अपने बेटे की शादी में तार--तार कर देता है। वह अपने ही साले की लड़की से अपने बेटे की शादी करता है। अर्थात् "कल तलाक जो भाई–बहन हाँ आज वे समधी–समधन बनता ठीक लगेगा ?"[17] जबकि पुरानी पीढ़ी अर्थात् असरूपी का पति अपने पोते के इस होने वाले विवाह से नाखुश है। वह इसका विरोध भी करता है। परन्तु पुरानी पीढ़ी की नवीन पीढ़ी के सामने एक नहीं चलती है। विवाह की उन रस्मों को भी दर–किनार किया जाता है जो हिन्दुओं में प्रचलित है जैसे चाकपूजा। अतर खाँ कहता है "ना ताई, सरम की कहा बात है, अपनो घर है... पर अबकी बार सोच रा हैं कोई चाक–वाक न पूजें... अरी पाँच–सात मटके ई तो मँगाने है... ऊतो ब्याह के पीछे भी मँगा लेंगा।"[18] इस तरह अतर खाँ हिन्दुओं का नहीं बल्कि हिन्दुओं की उन परम्पराओं का विरोध करता है जो आज भी मेवों में प्रचलित हैं।

'भूकंप' कहानी में किसी प्राकृतिक आपदा का चित्रण नहीं है बल्कि प्रकृति की संतानों 'मनुष्यों' द्वारा मन्दिर–मस्जिद के नाम पर पैदा किए साम्प्रदायिक भूकंप का चित्रण है। मेवात में भी यह खबर फैलती है कि 30 नवम्बर को देश में साम्प्रदायिक दंगा होगा फलस्वरूप गांव के अधिकतर लोग गांव छोड़कर चले जाते हैं लेकिन होता कुछ भी नहीं है।

कहानीकार कहानी की नायिका 'पारो' के अन्तर्मन के उस 'भूकम्प' को भी दिखाता है जो विपत्ति के समय सगे–सम्बन्धो का साथ छोड़ने से उत्पन्न होता है। पारो के बेटे–बहू आदि सगे परिवार वाले 30 नवम्बर की अनहोने तारीख की संभावना में असहाय पारो को अकेला गांव में छोड़कर चले जाते हैं। जिससे उसकी "अपने परायों के बीच रिश्तों की वह पतली डोर नज़र आ गई जिसको पकड़े वह स्वर्ग में जाने की आस लगाए बैठी थी।"[19] अगर 30 नवम्बर की इस अनहोनी संभावना में कोई उसका साथ देता तो वे गांव वाले ही हैं जो मेवात की खास विशेषता मानी जाती है।

कहानी 'अरण्यकाण्ड' पण्डित कृपाशंकर की है, जो एक तरफ तो विनम्र भाव से "शबरी के भक्ति–भाव और अपने श्रीराम की उदारता और विशाालता को बड़े रोचक तरीके से लोच–लोच कर लोगों को सुनाते हैं वहीं दूसरी तरफ इतने संकीर्ण व जातिवादी है कि "चौतेर पर जहाँ उन्होंने ठाकुर जी का थड़ा बनाया है मजाल है छोटी–मोटी जाति के लोग वहाँ फटक तो जाए।"[20] सनकी इतने हैं कि एक दिन सनक सवार होती है, दिल्ली में जाकर बेटे से मिलने की। तो हो गए तैयार न कोई कारण न कार्य। वहाँ पहुँचने पर पता चलता

है कि बेटा वहाँ है ही नहीं दफ्तर के काम से बाहर गया है। अब एक नई मुसीबत आती है पेट पूजा की, क्योंकि बेटे का मकान–मालिक किए जाति का है उसको पता नहीं है, इसलिए उनके द्वारा दी गई चाय व पानी पंडित जी निर्ममता पूर्वक मोरी में डाल देते हैं तथा खाने के समय व्रत का झूठा बहाना बनाकर पीछा छुड़वा लेते हैं। अन्त में वे एक वैष्णव ढ़ाबा – बजरंगी ढ़ाबा' पर खाना खाते हैं वहां भी बाद में पता चलता है कि खाना बनाने वाले लोग नीची जाति के ही हैं। अब तो "कृपाशंकर बार–बार हलक में अन्दर तक अंगुलियां डाल कर उल्टी के द्वारा पेट में पड़े रोटी के एक–एक क्षण को निकालने का प्रयास करते रहे। हलक में बार बार अंगुलियां डालने से और जबरन उल्टियाँ करने की कोशिश में उनकी आंखे बाहर निकल आई। जबरन उल्टियाँ करने से उनकी पसलियों में दर्द होने लगा।"[21] मतलब यह कि 'प्राण जाये पर संस्कार न जाए।' अर्थात् पंडित कृपाशंकर जैसे आज भी ऐसे लोग हैं जो जाति के प्रति इतने कट्टर हैं कि उनका छूना तो दूर उनकी छुई हुई वस्तु को छू लेना भी उनके लिए जीवन–मरण का सवाल बन जाता है।

'आप्रवासी' कहानी सरदार मंगत्या की है जो अपने ही देश में एक अप्रवासी की तरह रहता है। शहर में बच्चों की आपस में होने वाली कहासुनी बड़ों की लड़ाई करवा देती है, जिससे मंगत्या को शहर छोड़ने के लिए मजबूर होना पड़ता है। मंगत्या शहर छोड़ने पर उसके साथी मुखत्यार के साथ गाँव में रहने आता है। लेकिन वहाँ की पंचायत भी उसे सरदार होने की वजह से रहने नहीं देती बावजूद इसके कि मंगत्या कड़ा, केश भी त्याग देता है।

मंगत्या की इस अप्रवासी जैसी स्थिति का दर्द तब फूट पड़ता है जब वह मुखत्यार से कहता है "सच्ची दसां... साड़े जैसे आदमियाँ वास्ते इस मुलक विच किधर वी जगह नईं ए। मेरे वी केस सी, पर मलोट विच वी किसे नूँ यकीन नई आंदा कि असी हिन्दू हाँ या सिख। उत्थे वी सानू रोज धमकी मिल दी सी कि या तो मलोट छड़ या फेर नतीजा भुगतण वास्ते तैयार रहो।"[22]

'आप्रवासी' अगर एक सरदार के अस्तित्व व अस्मिता की कहानी है तो 'रँग अबीर' मुस्लिम युवक वहीद की। वहीद बहुत ही 'नफासत', 'संजीदगी' व 'खुलेपन' वाला आदमी है। वह हिन्दुओं के एक गाँव में सैलून की दुकान खोलता है। सभी के सुख दुख में काम आने के बावजूद भी उसे गाँव छोड़ने को मजबूर होना पड़ता है, क्योंकि वह गांव के कुछ युवकों की आपस में होने वाली लड़ाई का प्रत्यक्षदर्शी गवाह होता है।

एस.एच.ओ. सूबेसिंह गांव के भोले–भाले युवकों को वहीद के बारे में बहकाता है कि "मैम्बर साब, मान लो मेरी बात अभी भी मौका है... मुझे तो लगता है यह कटुआ हम हिन्दुओं को आपस में लड़ाना चाहता है... ।"[23]

कहानीकार ने इस कहानी व 'आप्रवासी' कहानी के माध्यम से लोगों के उस पूर्वाग्रह को भी पकड़ा है जो किसी कौम या धर्म विशेष लोगों के प्रति मनो–मस्तिष्क में गहरा पैठकर जगह बना चुके है। फिर चाहे उस कौम या धर्म का आदमी कितनी ही इंशानियत दिखाए उनको ढोंग ही दिखाई देगा। मंगत्या सरदार व वहीद किसी का बुरा नहीं चाहते हैं लेकिन दोनों को गांव से इसलिए निकाल दिया जाता है कि एक सरदार है दूसरा मुस्लिम। इस कहानी के माध्यम से धीरे–धीरे गांवों में भी शहर की तरह होने वाले अजनबीपन की ओर संकेत किया गया है। गांव भी अब उतने आत्मीय व सहृदय नहीं रहे जितना पहले। मंगत्या शहर से गांव में इसीलिए आता है क्योंकि वहां ज्यादा आत्मीयता होती है लेकिन वहां भी उसे उपेक्षित ही समझा जाता है। कुछ लोग जो गांव में हमदर्द व समझदार होते हैं उनकी, गाँव की पंचायत के सामने एक नहीं चलती है और वे मन मारकर रह जाते हैं 'आप्रवासी' का मुखत्यार व 'रंग–अबीर' का लाला डालचन्द जैन ऐसे ही पात्र हैं।

'बस तुम न होते पिता जी' एक पारिवारिक कहानी है जिसमें अन्य कहानियों से हटकर पिता की तस्वीर 'खलनायक' की तरह पेश की गई है। पिता शराबी तथा घर की जिम्मेदारियों से बेखबर है। परिवार के सभी सदस्य उससे परेशान होने के बावजूद भी उसका खुलकर विरोध नहीं करते जिसका कारण शायद भारतीय संस्कार 'पितृ देवोभव' हो सकता है।

यह कहानी हिन्दी साहित्य में एक नई तरह की कहानी है क्योंकि अब तक हिन्दी कहानियों में पुत्र के 'गलत राह' चलने से पिता परेशान होता था और वह उसे समझाता था लेकिन इसमें पिता के गलत राह पर चलने से पुत्र परेशान है और वह उसे समझाता है। कहानीकार बताना चाहता है कि हमेशा नई पीढ़ी का ही दोष नहीं होता कभी–कभी पुरानी पीढ़ी भी ऐसा काम कर जाती है जिसका दण्ड नई पीढ़ी को भुगतना पड़ता है।

'अँधेरा' कहानी में कहानी का नायक एक लेखक है जिसकी पत्नी बिमार है।

लेखक की कहानी का नायक प्रेम कहानी लिखता है जिसमें उसको नायिका को यह विश्वास दिलाना है कि वह उससे प्रेम करता है। कहानी के लेखक की पत्नी इसे अपने पति की प्रेमिका होने का भ्रम पालती है। इस प्रकार इस कहानी में कहानीकार एक लेखक की पत्नी के उस अँधेरे की चर्चा करते हैं जो भ्रमवश वह पाले रखती है। कहानी के लेखक की पत्नी का अँधेरा तब ही छँटता है जब नायक उसे सब कुछ बताता है। इस प्रकार कहानी में 'अँधेरा' नायक की पत्नी के मानसिक अँधेरे का प्रतीक है जिसके कारण वह डिप्रेशन में ज्यादा बिमार रहती है।

मोरवाल की अधिकतर कहानियों की पृष्ठभूमि मेवात होने पर भी उसकी समस्याएँ वृहत् स्तर पर विद्यमान होती हैं। सामासिक संस्कृति की टूटती परम्पराएँ केवल मेवात में ही दिखाई नहीं देती हैं, बल्कि पूरे भारतीय जातीय मानस को भी कहानियों के माध्यम से अभिव्यक्त किया गया है। 'आप्रवासी', 'रँग–अबीर' कहानियां अपने व्यापक यथार्थ से निर्मित कहानियां है।

जहां तक कहानियों की भाषा की बात है तो कहानियों में एक "नाटकीयता के साथ कवित्व भी है जो जीवन–प्रसंगों को मार्मिक और गहरा बनाता है।"[24] कहानियों का आधार मेवात क्षेत्र व पात्र मेवाती हैं उसमें मेवाती भाषा का प्रयोग बहुत ही सुचारू ढंग से किया गया है। इससे कहानियां ज्यादा रोचक व स्थानीयता का पुट देने लगी है। मेवाती भाषा का भी हिन्दी साहित्य में प्रयोग पहली बार मोरवाल के इसी कहानी संग्रह से संभव हो सका है। कहानी संग्रह की भाषा का एक उदाहरण यहां देना प्रासंगिक होगा जिसमें नाटकीयता के साथ–साथ एक स्थानीयता भी विद्यमान है –

"कब बिहा री है पोता ? कलबत्ती ने पूछा।

"अरी हम कौण होवे हैं बिहाण वाला...।" पसीने से भीगे हुए माथे को पोंछते हुए अशकफी ने जबाव दिया।

"साँप की माँवसी... तू बड़ी चुप्प छिनाल है, मै सब जानू हूँ।" अशकफी ने आहत मन से कहा।"[25] (महराब कहानी)

कहानियों में स्थानीय मुहावरों, लोकोक्तियों, लोकगीतों व लोक विश्वासों का भी कहानीकार भरपूर प्रयोग करता है, जिससे कहानी का परिवेश ज्यादा यथार्थ रूप से उभर कर सामने आया है। 'पुआ ना पापड़ी गद्द बहू आ पड़ी', कब मरी सासू कब आया आँसू'

ऐसी ही स्थानीय लोकोक्तियां हैं तो मेरी कौली की दूखे आंख...' 'भाई अच्छो भरियो भात ...' ऐसे ही लोकगीत हैं।

(ब) उपन्यास –

काला पहाड़

कहानी संग्रह अस्सी मॉडल उर्फ सूबेदार के बाद 'काला पहाड़' भगवान दास मोरवाल का पहला महत्त्वपूर्ण उपन्यास है। उपन्यास में मेवाती अंचल की गाथा है जिसको पढ़ते हुए फणीश्वरनाथ रेणु के 'मैला आँचल' की याद आ जाती है। इस उपन्यास में मेवाती अंचल की गाथा होते हुए भी प्रचलित अर्थों में यह आंचलिक उपन्यास नहीं है। इसमें अंचल के किसानों, मजदूरों, वर्णों–वर्गों में बंटी जातियों के लोगों व उनकी टूटती–बिखरती परम्परागत जीवन प्रणालियों के विविध चित्र मौजूद हैं। इसमें शहरों व राजधानियों के राजनीतिज्ञों की ओर से आ रहे प्रपंचों का प्रभाव वहां के लोगों पर बड़े सटीक ढंग से दिखाया गया है। इसमें भी 'मैला आंचल' की तरह स्वाधीनता के बाद के गांव का चित्रण है लेकिन स्वाधीनता के 50 साल बाद का गाँव जो अपने पिछड़ेपन में 'मैला आंचल' के गांव की बराबरी कर सकता है। उपन्यास के कथा का आधार वही मेवाती समाज है जो पहले भी उनकी कहानियों में अपनी उपस्थिति दर्ज करा चुका है। कहानियों में जो प्रसंग बहुत छोटे रह गए जहाँ वे केवल संकेत भर सके हैं, उपन्यास में वे प्रसंग ज्यादा मुखर व व्यापकता के साथ प्रकट हो सके हैं। उपन्यास 'काला पहाड़' में मेवाती लोक जीवन की सम्यक अभिव्यक्ति अपनी यथार्थता के साथ प्रकट होती है।

उपन्यासकार पहली बार पूरे मेव जाति के इतिहास को खोलने की चेष्टा करता है। उनके चारित्रिक व ऐतिहासिक गुणों को (इतिहास के माध्यम से) खोलकर उपन्यासकार रखता चलता है। यहाँ की साँझी विरासत की ऐतिहासिक धरोहर व हाल ही में देश में भड़के साम्प्रदायिक दंगों से उसमें होती जा रही कमी को उपन्यासकार दिखाता है, जो फिरका परस्तों की जीत को भी दर्शाती है।

उपन्यास में जिन्दगी के विविध उल्लास है – जिससे मेवाती समाज का लोक अपनी पूर्ण छटा के साथ जीवन्त रूप से प्रकट हो सका है। पुत्र जन्म, विवाह तीज–त्यौहार

के साथ मनोरंजन, खेलकूद प्रतियोगिता आदि का भी यथार्थ चित्रण यहां मौजूद है। 'नगीना' गांव के सांस्कृतिक साझेपन में शामिल अकेला सलेमी नहीं है बल्कि गाँव के स्वभाव में यह शामिल है। हिन्दू मुसलमानों के देवी–देवता, त्योहार और पूजा स्थलों पर सब बिना किसी रोक–टोक के जाते हैं। दादाखानू पर सभी लोग गलेप चढ़ाने जाते हैं। यहाँ की जनता किस्सों व कहानियों में जीति है। यहाँ के किस्सों पर किसी समुदाय का अधिकार नहीं है, सभी किस्सों पर समान रूप से सभी समुदायों का अधिकार है फिर चाहे वह 'हसन खां मेवाती' का किस्सा हो या फिर 'चन्दरावल गूजरी' का।

वीरेन्द्र यादव इस उपन्यास को केवल मेवात से ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण भारतीय समाज से जोड़कर इसे "स्वातन्त्र्योत्तर भारतीय समाज के धर्म निरपेक्ष ढाँचे की टूटन के रूप में पढ़ने"[26] की बात कहते हैं तो सुधीश पचौरी इसे हिन्दी में अब तक 'अकथित की कथा' कहते हुए लिखते हैं "काला पहाड़ हिन्दी में अब तक 'अकथित की कथा है, यहां हरियाणा के एक पिछड़े इलाके मेवात की कथा कही गई है... यहां गजट है, इतिहास है, किंवदन्तियां है, यादे हैं, किस्से हैं, हरियाणा की लोक गीत वृत्तांत शैली 'बात' कहते हैं। बहुत चीजों की मिक्सिंग है।"[27] यहां मिक्सिंग केवल दो चीजों की ही नहीं बल्कि दो संस्कृतियों के आचार–विचार, रहन–सहन, पूजा–पाठ, मान्यताओं व परम्पराओं की भी है।

मेवात की समस्या बनाम हिन्दुस्तानी गांव की समस्या –

नोबल पुरस्कार विजेता टॉनी मरिसन का मानना है कि 'सर्वोत्तम कला राजनैतिक होती है।' 'काला पहाड़' को हम राजनैतिक उपन्यास कहें तो कोई गलत नहीं होगा। इस उपन्यास की शुरूआत ही राजनैतिक स्वर और व्यंग्य से होती है गांव में हो–हल्ला है कि प्रधानमंत्री आ रहे हैं इसके कारण गांव में उथल–पुथल मचती है। गांव का कुछ हद तक नवीनीकरण होता है (लेकिन बाह्य आन्तरिक नहीं) लोगों को आशा जगती है कि प्रधानमंत्री आ रहे हैं हो सकता है गांव का कुछ भला हो जाए। पिछड़ेपन की गर्त से दबे इस गांव का कहीं उद्धार हो। वे आते हैं और चले जाते हैं, लोग मुंह तकते रह जाते हैं, वादे किए जाते हैं और भुला दिये जाते हैं। इस सम्पूर्ण घटनाक्रम में लेखक प्रजातन्त्र व विकास के नाटक पर दो बार व्यंग्य करता है एक घटना वह जिसमें प्रधानमंत्री का काफिला अचानक रूक जाता है और ब्लैक कैट को रास्ते के बीचोंबीच आई भैंसों को

हटाने की हुज्जत करनी पड़ती है। यहां भैंस मानों प्रधानमंत्री का रास्ता रोककर इस क्षेत्र के पिछड़ेपन का ध्यान दिलाना चाह रही हो लेकिन प्रधानमंत्री का ध्यान जाता है तो भी नजर अन्दाज कर दिया जाता है। गांव का युवा सरपंच जब विकास के नाम पर किए जाने वाले झूठे वादों का पर्दाफाश करता है तब दूसरे प्रसंग में प्रधानमंत्री एवं मुख्यमंत्री के चेहरे काले पड़ने लगते हैं। प्रधानमंत्री व मुख्यमंत्री के सामने रखी गई युवा सरपंच की मांग–सिंचाई के लिए नहर, रेलवे लाइन, बेरोजगारों के लिए रोजगार व्यवस्था हेतु उद्योग–धंधे, सड़क निर्माण, स्वास्थ्य सेवायें इस बात को दर्शाती है कि आजादी के 52 वर्ष बाद भी भारतीय गांवों की क्या हालत है। पीने के पानी के लिए आज भी गांवों से कोसों दूर जाकर पानी लाया जाता है। गांधी जी ने जिस स्वराज का सपना देखा था वह गांवों के लिए आज भी सपना ही है। गांधी जी का स्वराज केवल राजधानी या बड़े शहरों का बंधक बनकर ही रह गया है।

प्रजातंत्र, भ्रष्टाचार और पिछड़ेपन के बीच भारत में अटूट सम्बन्ध है। प्रजातंत्र के सिरमौर समाज को लूट रहे हैं और मजे कर रहे हैं। उन्हें देश की भलाई की चिन्ता नहीं बल्कि अपनी भलाई की चिन्ता है, उन्हें देश के विकास की चिन्ता नहीं बल्कि अपने विकास की चिन्ता है। प्रजातंत्र के सिरमौर जनता को मूर्ख बनाकर अपना उल्लू सीधा करते आ रहे हैं। उपन्यास का एक एक पात्र राजनीति के इसी स्वार्थपूर्ण व्यवहार की चर्चा करते हुए कहता है "ताऊ, या इलाका का लीडर हमन्ने ऐसे ही बणाता आ रहा है... ई वही मुखमंत्री है जो एक बर या इलाका ने बणवायो हो... पर एम.पी. बणतेई सबन्ने भूलगो... आज जब ई मुखमंत्री है तो हमारा लीडर अपना फायदा कू मेवात रतन अवार्ड दे रा है।"[28]

प्रसिद्ध उपन्यासकार विवेकी राय ने लिखा है कि 'पिछड़ापन ही आंचलिकता है।' विवेकी राय का यह कथन उपयुक्त ही है क्योंकि कोई भी लेखक किसी उपन्यास में किसी क्षेत्र के पिछड़ेपन का चित्रण करता है तो उसमें स्थानीयता आ जाना स्वाभाविक ही है फिर यह एक अंचल की कथा होते हुए उस अंचल तक ही सीमित नहीं रहती। फणीश्वरनाथ रेणु, राही मासूम रज़ा से लेकर विवेकी राय और भगवान दास मोरवाल तक के उपन्यासों में एक क्षेत्र तो आया है लेकिन इनकी समस्या आम भारतीय गांवों की समस्या है। हाँ स्थानीय बोली–बानी, रीति–रिवाज आदि में थोड़ा बहुत अन्तर हो सकता है।

भारत के गांव पिछड़े हैं विकास के नाम पर उनमें केवल कच्चे मकान एवं कुपोषण है। इसी पिछड़ेपन के कारण रोजगार की तलाश में किसान शहरों की ओर पलायन

करते हैं और वहां वे झुग्गी–झौंपड़ियों में नारकीय जीवन व्यतीत करते हैं। उपन्यास में मनीराम पलायन की समस्या पर प्रकाश डालते हुए कहता है "सलेमी, या गांवों में रहके कोई भूखो थोड़ेई मरणो है। न कोई रूजगार, न धंधा–लावणी भी अब ना रही... जब पेट ही भरणो मुसकल हो जाय तो आदमी यही करेगा।"[29]

कलकत्ता, दिल्ली, मुम्बई, अहमदाबाद जैसे शहरों में गांव से आकर बसे हुए मजदूर अंटे पड़े हैं। ग्रामीण अर्थव्यवस्था टूट रही है। 'काला पहाड़' के साये तले धूल ही धूल उड़ रही है। "वही नगीना जिसके गैल दगड़े और चांदनी रातें कभी होली के नजदीक आते ही हँसी–ठिठोलियों से सराबोर हो उठती थी, अब उन ठिठोलियों की बस बाट जोहती रातें निर्विकार भाव से चुप्पी साधे रहती हैं।"[30] गांवों व शहरों के विकास का यह असंतुलन शहरों में भीड़ व प्रदूषण बढ़ा रहा है। आज के भूमंडलीकरण व उदारवादी अर्थतंत्र ने भी शहर और गांव के अन्तर को बढ़ा दिया है। "इस उपन्यास में गांव का पिछड़ापन, गरीबी, बदहाली रेगिस्तान के रेत की तरह धू–धू कर उड़ती नज़र आती है।"[31]

उत्तर आधुनिकता के इस दौर में, गांवों में आधुनिकता भी नहीं है। 'काला पहाड़' के नायक सलेमी का यह कथन "ना... ऊ बात ना है... वाडी या जिन्दगी में हमने देखोई कहा है... आज तलक मेरी सुरी रेल तो देखी ना गई, वामें बैठणो तो अलग रहो ... और वैसे ई सुणता आ रा है के दुनिया चाँद पे हो आई है...।"[32] सलेमी का यह कथन भारत में उत्तर आधुनिकता का दंभ भरने वाले लोगों पर करारा तमाचा है।

धर्म निरपेक्षता का टूटता ढांचा –

उपन्यास 'काला पहाड़' स्वातन्त्र्योत्तर भारतीय समाज के उस धर्म निरपेक्ष ढाँचे की टूटन को दर्शाता है जो बाबरी मस्जिद विध्वंस (6 दिसम्बर 1992) के साथ दरक चुका है। उपन्यासकार इस विमर्श को मेव समाज की भौगोलिक व सामाजिक पृष्ठभूमि में प्रस्तुत करता है जो अपने व्यापक दृष्टिकोण के कारण पूरे भारत में हो रहे साम्प्रदायिक उन्माद को अपने में समेट लेता है। चूंकि कला किसी देशकाल से बँधी नहीं होती है इसलिए मेवात का साम्प्रदायिक दंगा केवल वहीं का नहीं बल्कि पूरे भारत में धर्म निरपेक्षता की टूटती कड़ियों को भी व्यक्त करता है फिर वह चाहे गोधरा नरसंहार (2002 ई.) हो या मऊ का दंगा (2005)।

मानव इतिहास में धर्म के नाम पर सदैव विवाद उठते रहे हैं। धर्म की दृष्टि से भारत विशेष रूप से हतभाग्य रहा है। स्वाधीनता आन्दोलन के समय अंग्रेजों ने भारत में अपना शासन बनाए रखने के लिए धार्मिक भेदभावों का विशेष लाभ उठाया। अंग्रेजी शासन काल में साम्प्रदायिक भावनाओं को राजनीतिक रूप मिलने का एक कारण यहां प्रतिनिधि या निर्वाचित संस्थाओं की स्थापना भी थी। अंग्रेज लोग प्रतिनिधित्व का अर्थ अलग–अलग समूहों, वर्गों, हितों, क्षेत्रों, संस्थाओं और सम्प्रदायों का प्रतिनिधित्व समझते थे। उन्होंने भारत के अनेक सम्प्रदायों और जातियों की समस्या को इनके स्वाभाविक अस्तित्व बोध और एक–दूसरे की आपसी वैमनस्यता की समस्या समझा और उसका उपाय अलग–अलग समूहों को पृथक–पृथक प्रतिनिधित्व देने में समझा।

स्वतंत्रता के बाद पिछले 60 वर्षों में देश में हुई साम्प्रदायिक घटनाओं की कुल तादाद आज लगभग 5000 ठहरती है। सन् 1987 में मेरठ शहर का भीषण साम्प्रदायिक दंगा, 1987 में ही पुरानी दिल्ली में साम्प्रदायिक हिंसा की वारदात, 5 जनवरी 1993 को मुम्बई शहर में साम्प्रदायिक हिंसा, फरवरी 2002 में गोधरा की साम्प्रदायिक हिंसा आदि वारदातें भारतीय सामासिक संस्कृति के इतिहास पर काले धब्बे हैं।

'काला पहाड़' में जिस साम्प्रदायिक दंगे का चित्रण है, वह है 6 दिसम्बर 1992 का रामजन्म भूमि–बाबरी मस्जिद विवाद। इस दंगे ने व्यापक रूप से पूरे भारत की प्राचीन सामसिक संस्कृति को दरकाया था। गृह मंत्रालय के दस्तावेज के अनुसार "किसी एक मुद्दे ने हिन्दु–मुस्लिम समुदाय के आपसी सद्भाव को इस कदर नहीं बिगाड़ा जितना कि राम–जन्मभूमि बाबरी मस्जिद विवाद ने बिगाड़ा।"[33] दस्तावेज में आगे कहा गया है कि "राजनीति को साम्प्रदायिकता का जामा पहनाने की बढ़ती प्रवृत्ति के कारण सम्प्रदायों के आपसी सम्बन्ध सामान्य बनाने की प्रक्रिया में बड़ी बाधा पैदा हो गई है।"[34]

6 दिसम्बर 1992 का साम्प्रदायिक दंगा इतना व्यापक था कि जहां आज तक कभी साम्प्रदायिक दंगा नहीं हुआ था वहां भी इस समय साम्प्रदायिक दंगा हुआ। जो मेवात समाज आज तक कभी साम्प्रदायिक हिंसा का शिकार नहीं हुआ था वहां भी 6 दिसम्बर की यह घटना अपना रंग लाती है और व्यापक पैमाने पर साम्प्रदायिक दंगे होते हैं। मंदिरों में आग लगाना, मूर्तियां तोड़ना, हिन्दू–मुस्लिमों की खूनी रंजिश जैसी घटनाऐं घटती है। भारतीय अमेरिकी विद्वान आशुतोष वार्ष्णेय का कहना है कि "साम्प्रदायिकता भारतीय नगर

जीवन की प्रमुख प्रवृत्ति रही है और देश का ग्रामीण इलाका इससे काफी हद तक अछूता रहा है।"[35] लेकिन 6 दिसम्बर की इस घटना ने उन इलाकों को भी प्रभावित किया जिसे वार्ष्णेय ग्रामीण इलाका कहते हैं।

मेवात समाज जिसमें "अठारह सौ सत्तावन में दो सौ अठ्ठावन मेव जाति के लोग शहीद हुए थे। इस इलाके में कोई फिरकाना फसाद न हुआ है, सबसू बड़ी बात तो ई है कि या इलाका में हिन्दू और मुसलमान एक कुणबा तरह रहता आया है।... मजाल है कि कोई काहे की बहाण बेटी पे आंख तो उठा जाए।"[36] लेकिन इसी मेवात में साम्प्रदायिक दंगे के कारण सामासिक संस्कृति के प्रतीक सलेमी को यह पछतावा करना पड़ता है "मैं तो रात दिन बस वा घड़ी ए कोसती रहूँ... जा घड़ी हमने पाकस्तान जाण सू ना कर दी ही।"[37]

साम्प्रदायिकता का खुद कोई तात्त्विक अस्तित्व नहीं होता है। यह कोई मनुष्य की मूलभूत क्रिया नहीं है बल्कि एक उत्तेजित क्रिया मात्र है। मेवात समाज में आर्य सभा, राजनीतिक दल आदि साम्प्रदायिकता को उभारने का काम करते हैं। 'काला पहाड़' के ज्ञान चन्द जैन, अभयचन्द आर्य, विसम्भर सन्नार्थी आदि 6 दिसम्बर के संभावित मनगढ़न्त आतंक से इलाके के हिन्दुओं की एकता व अस्मिता के विश्व हिन्दू परिषद के सुनियोजित अभियान के तहत गांव के चिमरवाड़े में पहुँचते हैं और 'सारे हिन्दुओं को ऐसे बुरे वक्त में साथ रहना चाहिए..।' जैसे जुमले उछालकर उनको उकसाना चाहते हैं, लेकिन लीला जैसे लोग इनकी धुर उतारते है और कहते हैं "इनको मगज खराब हो रो है जो ये खून खच्चर करेंगा।"[38]

'काला पहाड़' में विद्यमान साम्प्रदायिकता के सम्बन्ध में एक बात और ध्यातव्य है, वह यह कि साम्प्रदायिकता से वही लोग संक्रमित हुए हैं जो व्यक्तिगत तौर पर किसी न किसी प्रकार की अनैतिकता या अवैधता के अभ्यस्त हैं, जिनकी चेतना में बेईमानी और दोगलापन विद्यमान है। जिसकी आस्तिकता खत्म हो चुकी है फिर वह चाहे नेतागण चौधरी करीम हुसैन, मुर्शीद अहमद हो या खाता–पीता, पढ़ा–लिखा मध्यवर्ग। पुलिस व अर्द्धसैनिक बल भी इसमें अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

धर्माधारित पंचायत चुनाव भी सामासिक संस्कृति के टूटते दायरों को दर्शाते हैं। जहां पहले धर्म से परे होकर चुनाव होते थे वहीं अब हिन्दु–मुस्लिम के आधार पर चुनाव होने लगे हैं। उपन्यास में दिखाया गया है कि हिन्दूवादियों के नेता स्वयं पहल करते हुए चुनाव की सारी कमान अपने हाथ में ले लेते हैं और मानक सरपंच इसे अपने लिए 'सौभाग्य

की बात' समझता है। दूसरी तरफ चौधरी खुर्शीद अहमद हाजी अशरफ को मेवों का उम्मीदवार बनाकर मैदान में उतरवा देता है। बाबू खां जैसे लोग मेवों को एकजुट करने में दिन–रात लगा देते हैं। इन चुनावों में साम्प्रदायिकता का आलम यह है कि गांव के जो लोग कहीं और जाकर बस गए हैं, राजनीति के पुरोधा उनके घर जा–जाकर उन्हें वोट देने के लिए प्रार्थना करते हैं। इतना ही नहीं बल्कि वोट के दिन उनके लिए 'घोड़ा–गाड़ी' का बन्दोबस्त भी करते हैं ताकि उन्हें आने में कोई परेशानी नहो। इसमें उल्लेखनीय बात यह है कि इनमें से अधिकतर निम्न जातियों के वे लोग हैं जो साम्प्रदायिकता से अछूते हैं और जिन्हें हिन्दूवाद के नाम पर एकजुट करने की मुहिम चलाई जाती है। ये हिन्दूवादी नेता यूं तो सिद्धान्ततः और व्यवहारतः इनसे परहेज करते हैं, लेकिन चुनाव के अवसर पर गांधी भक्ति का मुखौटा लगाकर 'गधे को भी बाप बनाने' की अवसरवादिता का उदाहरण पेश करते हैं। उपन्यास का एक पात्र ज्ञानचन्द जैन ऐसा ही पात्र है जो कहने को तो कट्टर गांधीवादी है लेकिन 'नजफगढ़' जाकर चमारों के घर का पानी भी नहीं पीता है जबकि चुनाव मांगने के समय हिन्दुत्व की दुहाई देता है। उपन्यास 'बाबल तेरा देस' में भी स्थानीय ग्राम पंचायत के चुनाव में पहली बार शकीला सरपंच का चुनाव जीत जाती है लेकिन दूसरी बार चुनाव हार जाती है क्योंकि पहली बार चुनाव में जहां 'हिन्दुत्व का कार्ड सूखे पत्ते की तरह छिन्न–भिन्न हो गया था[39] वहीं दूसरी बार साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण की प्रक्रिया तीव्रता से शुरू होती है और सालिग राम सन्नार्थी की बहू पद्मा सरपंच का चुनाव जीत जाती है। रामचन्दर शकीला की हार का कारण बताते हुए कहता है "इन इलेक्शन में वोट आदमी और आदमी के काम पे ना गिरी है बल्कि हिन्दु व मुसलमान का नाम पे गिरी है।"[40]

धर्म के आधार पर सवर्णों द्वारा की जा रही राजनीति, वही चालबाजी है, जिसके तहत वे हिन्दूवाद के नाम पर दलितों को एक बार फिर इतिहास में अपना मोहरा बनाकर, अपने हित में उनका अवसरवादी इस्तेमाल कर, उन्हें छूँछ की तरह निचोड़कर फेंक दे।

मेवात के संदर्भ में जब साम्प्रदायिकता की स्थितियों के निर्णायक कारकों पर विचार करते हैं तो वही कारण सामने आते हैं जो शेष उत्तर भारत में उत्तरदायी है। मेवात के साथ खास बात यह है कि यहां विभिन्न धर्मावलम्बियों के बीच शक्ति का संतुलन लगभग समकोणीय रहा है। साथ ही मेवों की बद्धमूल असाम्प्रदायिकता तथा धर्मनिरपेक्षता मेवात को अभी तक बचाए हुए है। "अतः स्पष्ट है कि मेवात की साम्प्रदायिकता की समस्या मौजूदा

TH-13552

Nehru University

साम्राज्यवाद–पूँजीवाद परस्त जन विरोधी भारतीय राजनीति एवं प्रशासन तंत्र का ही एक बॉय प्रोडक्ट है।... मेवात का आमजन चाहे वह हिन्दू हो या मेव स्वभावतः साम्प्रदायिक नहीं है। वह धार्मिक अवश्य हो सकता है लेकिन साम्प्रदायिक हरगिज नहीं। दरअसल स्थितियाँ ऐसी पैदा की जा रही है कि मेवात का यह परम्परागत सांस्कृतिक साँझापन छिन्न–भिन्न हो और यहाँ उच्च जातियों पूँजीवादियों का वर्चस्व स्थापित हो, उनके एजेंडे के अनुसार इस क्षेत्र का राजनीतिक–सामाजिक–सांस्कृतिक पुनर्संगठन और दोहन हो।"[41]

'काला पहाड़' उपन्यास में भारत की सामासिक संस्कृति की परम्परा का जो ह्रास दिखाया गया है, वह पुरानी पीढ़ी व नई पीढ़ी का संघर्ष भी है। पुरानी पीढ़ी जहाँ सामासिक संस्कृति को बचाए रखना चाहती है वहीं आधुनिक पीढ़ी धर्म के प्रति ज्यादा कट्टर होती जा रही है। कहानी 'महराब' में असरफी का बेटा नई पीढ़ी का प्रतिनिधि पात्र है तो 'काला पहाड़' का बाबू खां। उपन्यास का नायक सलेमी 'सामसिक संस्कृति' का जीवन्त रूप है। सलेमी की पीढ़ी के सभी लोग उस संस्कृति को बचाने की भरपूर कोशिश करते हैं फिर चाहे वह सलेमी का लंगोटिया यार मनिराम हो या रोबड़ा। अन्त में सलेमी की मौत को दिखाकर उपन्यासकार इस तरफ इशारा करना चाहता है कि अब धीरे–धीरे भारतीय संस्कृति की पहचान – 'समन्वयवादी संस्कृति' – भी खत्म होती जा रही है। अब देश की बागडोर बाबू खां जैसे युवा लोगों के पास है जिनके सोचने का ढंग एकदम अलग है।

बाबू खां मेवों में नई परम्पराओं की शुरूआत करता है जो देश के अन्य मुस्लिम लोगों में विद्यमान है जैसे विवाह में चाक पूजा नहीं करवाना, नौसी को बुर्के में लाना, साम्प्रदायिक उन्माद फैलाना, अपने साले की लड़की से अपने बेटे का विवाह करना आदि आदि। उसी की पीढ़ी का सुभान खां दादा खानू की मजार पर गलेप (चादर) चढ़ाने के पुश्तैनी पेशे से छुटकारा पाकर रामदेई से दिवाली के दीपक लेने से मना कर देता है। सुभान खां कहता है "रामदेई कोण–सा मुफ्त में देएगी... वाहे ना देणी पडेगी सेर आध सेर अनाज ... फिर ताऊ सही बात तो ई है के हमारे कौण सी होली–दीवाली मने ही है जो हम दीवा लेएँ... ?"[42] सुभान खां का दीवाली के दीए लेने से इन्कार करना केवल आर्थिक दबाव नहीं है बल्कि नई पीढ़ी की वह मानसिकता है जो ज्यादा धार्मिक व साम्प्रदायिक हुई है। सलेमी भी अपनी उस संस्कृति को केवल किस्सों में या अपनी स्मृति में ही याद करता है। सलेमी द्वारा अपने विवाह में घटित साँझी संस्कृति के उत्सव का ब्यौरेवार वर्णन ऐसा ही प्रसंग है।

नई पीढ़ी के संदर्भ में कमला प्रसाद का यह कथन बहुत ही उचित व सार्थक है "बाबू खां आजादी की कोख से आयाहै, इस कारण तमाम राजनीतिक–सामाजिक प्रदूषण में 'नौसी' बुरके में आती है।... यह घटना इस बात का साक्ष्य है कि स्वतंत्र भारत की राजनीतिक शिक्षा ने लोगों के दिमाग को साम्प्रदायिक बनाया है।"[43]

प्रश्न उठना स्वाभाविक ही है कि क्या यही है स्वतंत्रता कि स्वर्ण जयंती की उपलब्धि, कि इंसान ज्यादा धार्मिक हो जाए, हिन्दुस्तान की उस तहजीब को भुला दे जिसके कारण आज भी उसका गुणगान विदेशों में होता है। उपन्यासकार का यह कथन उपयुक्त ही है कि "जिन क्यारियों में सद्भाव की कभी हरी–हरी दूब दिखाई देती थी, अब जगह–जगह कँटीली झाड़ियों को अंकुर तेजी से फूटते नज़र आने लगे हैं। इन क्यारियों में उग रही इन झाड़ियों की चौधरी करीम हुसैन, चौधरी मुर्शीद अहमद से लेकर डॉक्टर नसीर, डॉक्टर शफ़ीक और हाजी अशरफ जैसे लोग खुले आम खाद तथा पानी से और हरा भरा बनाने में लगे हुए हैं; बगैर यह सोचे हुए कि एक दिन इन्हीं झाड़ियों के नुकीले काँटे उनकी अँगुलियों के पोरों को भी लहुलुहान किए बिना मानेगें।"[44]

'काला पहाड़' उपन्यास में राजनीति एक पात्र के रूप में उभरी है। जहां साम्प्रदायिक उन्माद फैलाने में यह सबसे आगे है, वहीं गांव के विकास में सबसे पीछे। साम्प्रदायिकता के रूप में इसकी चर्चा कर चुकने के बाद थोड़ी चर्चा इसके उस पक्ष पर भी करना जरूरी है जो वह देशहित व समाज कल्याण के नाम पर करती है।

उपन्यास की शुरूआत गांव में प्रधानमंत्री के आने से होती है। लोग प्रधानमंत्री के भाषण सुनने दूर–दराज से आते हैं, इसलिए कि हो सकता है प्रधानमंत्री कुछ घोषणाएँ करे। प्रधानमंत्री के आने का कारण 1857 ई. में शहीद हुए मेवों की याद में 'साकरस चौबीसी' के नाम से एक शहीदी मीनार का शिलान्यास करना है। उपन्यासकार व्यंग्य करता है "अठ्ठारह सौ सत्तावन की क्रान्ति को गुजरे हो गया एक सदी से ऊपर और बहादुर मेवों की याद आ रही है अब ? वाह क्या संगत बैठाई है प्रधानमंत्री जी ने।"[45] ज़ाहिर है प्रधानमंत्री जी शहीदी मीनार का उद्घाटन करने नहीं बल्कि अपने चुनाव प्रचार का उद्घाटन करने आ रहे हैं।

भारतीय राजनीति के ग्रामीण विकास के नाम पर किए जा रहे बड़े–बड़े वादों व उसके स्वार्थी व्यवहार को अगर हम उपन्यासकार के ही शब्दों में कहें तो "आजादी से

लेकर आज तक इन पाँच दशकों में यही सब तो देखने सुनने को मिलता आ रहा है। चुनावों में हर बार बड़े–बड़े वायदे किए जाते हैं – नहर खोदने का वायदा, रेलवे लाईन बिछाने का वायदा किंतु चुनाव खत्म होते ही नहर और रेलवे लाईन बिछाने का वायदा या तो महज कल्पना की सलाइयों में उलझ कर रह जाते हैं या फिर बरसात में रेत की गीली देह पर अँगुलियों से उकेरी गई लकीरें जो धुप लगते ही धूल से फिर दब जाती है।"[45]

पुलिस व मीडिया भी राजनीति के साथ–साथ इस उपन्यास में एक पात्र की तरह अपनी भूमिका निभाते नज़र आते हैं। उपन्यास में पुलिस का चरित्र साम्प्रदायिक उन्माद फैलाने वालों के पक्ष में है न कि उनको रोकने में। पुलिस के सामने मन्दिर–मस्जिद लूटे जाते हैं लेकिन पुलिस तो उनको रोकने की बजाय 'दुकान–उकान लूटने' की सलाह देती है। अर्द्धसैनिक बल इसमें केवल अपनी इतनी ही भूमिका निभा पाते हैं कि दंगों के बाद निर्दोषों को पकड़कर ले जाते हैं और उन पर अत्याचार करते हैं। पकड़ते समय वे बच्चों भी नहीं छोड़ते हैं। पुलिस व अर्द्धसैनिक का चरित्र पक्षपातपूर्ण भी होता है। हालांकि साम्प्रदायिक उन्माद दोनों ही समुदाय के लोग फैलाते है लेकिन दण्ड केवल मेवों को ही मिलता है। पुलिस व अर्द्धसैनिक बल अधिकतर मामलों में केवल मेवों को ही पकड़के ले जाती है, हिन्दुओं को नहीं। इसका कारण शायद यह हो सकता है कि पुलिस प्रशासन में हिन्दुओं की संख्या अधिक है।

मीडिया भी झूठी खबर प्रकाशित करता है तथा बार–बार 'कोई बड़ी बात नहीं यह इलाका आने वाले टैम में दूसरा पाकिस्तान ही बन जाए' जैसी खबरें प्रकाशित कर लोगों के दिलों में भय व आशंका पैदा करता है। सुधीश पचौरी लिखते हैं "दिल्ली, राजनीति और सूचना का माध्यम ये तीन चीजें इस मेवात की 'डेमोग्राफी' को झटके देती है, किस्सों में रमने वाले एक दूसरे के साथ, हजार सम्बन्धों में अटूट ढंग से लिपटे रहने वाले हिन्दू ओर मुसलमान अचानक दिल्ली को खतरनाक पाते हैं। लोग दिल्ली चले जाते हैं और वहां से साम्प्रदायिक राजनीति लेकर लौटते हैं। रही कसर अखबार पूरी करते हैं जो अफवाहों से ज्यादा खतरनाक है।"[47] मीडिया का काम जहां सच्ची खबर देना है वहीं आपसी शान्ति सौहार्द बनाए रखने की अपील करना भी है लेकिन अखबार तो रोजाना यह खबर दे रहा है कि अब इस इलाके का कोई भरोसा नहीं रहा।'

'काला पहाड़' उपन्यास मेवात समाज के वहां के लोक जीवन के एक–एक पक्ष

को बहुत ही बारीकी से पकड़ताहै। अगर हम गहराई से देखें तो उपन्यास में मेवाती लोक जीवन अपने सम्पूर्ण रूप से उभरकर सामने आया है। वहां के तीज–त्यौहार, धार्मिक–सामाजिक रीति–रिवाज, लोकगीत, लोक कथाऐं आदि से उपन्यास सराबोर है। मेवाती लोकगीत व मुहावरों से उपन्यास में जगह–जगह एक रोचकता व सरसता विद्यमान है।

मेवाती जनता किस्सों में रमने वाली जनता है। हसन खां मेवाती जैसे नायक को वहां की जनता अपना हीरो मानती है। चौपाल में हुक्का पीते हुए लोग आज भी 'बत कही' कहते हुए सुने जा सकते हैं। महिलाओं को तो बस अवसर की प्रतीक्षा होती है लोकगीत गाने के लिए। मेवाती लोक जीवन की विस्तृत चर्चा अगले अध्याय में होगी।

इस प्रकार उपन्यास 'काला पहाड़' मेवाती समाज के लोकरंग व लोक जीवन का जीवन्त दस्तावेज तो है ही साथ ही उस 'दस्तावेज' में एक गतिशीलता भी विद्यमान है। गतिशीलता इसलिए कि मेवाती लोक जीवन में हो रहे परिवर्तनों को भी उपन्यासकार अपनी सूक्ष्म दृष्टि से पकड़ने में समर्थ हुआ है। मेवात समाज की समस्या के बहाने उपन्यासकार ने भारतीय गाँवों की दुर्दशा को उजागर करते हुए "मेव–मुसलमानों की उस त्रासदी को भी उज़ागर किया है जो इस्लाम धर्म स्वीकार करके भी पक्के मुसलमान नहीं बन सके और पक्के राष्ट्रवादी होने के बावजूद भी सांस्कृतिक राष्ट्रवादियों के विमर्श से बाहर हैं।"[48]

(iv) 'बाबल तेरा देस में'

'बाबल तेरा देस में' भगवान दास मोरवाल का दूसरा उपन्यास है। इस उपन्यास का प्रकाशन 2005 ई. में हुआ। उपन्यास का आधार वही मेवाती समाज है जो पहले उपन्यास 'काला पहाड़' का आधार है। आज के दो महत्त्वपूर्ण सवाल साम्प्रदायिकता व पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री की दुर्दशा को उपन्यासकार अपने उपन्यासों का आधार बनाता है। पहले उपन्यास में जहां मेवाती लोक जीवन के साथ साम्प्रदायिकता जैसी समस्या को उपन्यासकार उठाता है तो इसमें मेवाती जन जीवन के बहाने पितृसत्तात्मक समाज में घुटती नारी की पीड़ा व नारी के नीचे की खोखली जमीन को उपन्यासकार केन्द्र में रखता है। इसका कथानक मेवात के एक गाँव का है जिसमें 'हवेली' व 'कचैड़ी' के ईर्दगिर्द कहानी चक्कर लगाती है। 'हवेली' के माध्यम से नारी शोषण के विविध रूपों व हथियारों की कहानी है तो 'कचैड़ी' के माध्यम से मेवात के संगठित व सामासिक समाज की कहानी

उपन्यासकार कहता है। हवेली पितृसत्तात्मकता का प्रतीक है तो 'कचैड़ी' ग्राम पंचायत का। इसके प्रमुख पात्र शकीला, दादी जैतूनी, मुमताज, बत्तो, पारो, जुम्मी, हसीना, धनसिंह, नसीब खां, फत्तू, हीरा, हाजी चाँदमल, मुबीन, मुबारक, युनुस आदि हैं।

अगर 'काला पहाड़' में भगवान दास मोरवाल की कहानियां अपना विस्तृत रूप व आकार पाती हैं तो 'बाबल तेरा देस में' में 'काला पहाड़' के अधूरे व संक्षिप्त प्रसंग अपना आकार ग्रहण करते हैं, इस प्रकार 'बाबल तेरा देस में' उपन्यास को काला पहाड़ की ही अगली कड़ी कहा जाए तो कोई गलत नहीं होगा।" इस उपन्यास का प्रारम्भ जिस दोहे से होता है –

"बाबल तेरा देस में, एक बेटी एक बैल
हाथ पकड़के दीनी जामें, परदेसी के गैल।।"[49]

यह दोहा 'काला पहाड़' की एक पात्र उस समय कहती है जब विदुर वृद्ध सुलेमान हैदराबाद से मेमन नामक लड़की को विवाह करके अपने साथ लाता है। हालांकि इससे पहले भी उनकी कहानी 'लेकिन...' में हैदराबाद से खरीदकर या विवाह कर के लड़कियां लाने का प्रसंग आ चुका है। लेकिन इस उपन्यास में यह प्रसंग अपने विस्तृत रूप व आकार के साथ आता है। इसी प्रकार कुछ अन्य प्रसंग जैसे ग्राम पंचायत चुनाव का मुद्दा, मेवात समाज में स्त्रियों की दशा, उस समाज में अन्धविश्वास, अज्ञानता आदि का भी ब्यौरेवार चित्रण इस उपन्यास में उपन्यासकार करता है। 'काला पहाड़' की साम्प्रदायिक समस्या यहां कम व उसमें संकेतित स्त्री समस्या यहां अपना मुखर रूप ग्रहण करती है। 'बाबल तेरा देस में' उपन्यास पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री की करूण कहानी बयान करता है। उपन्यास के प्रारम्भ में व उपन्यास के नामकरण में जिस दोहे का प्रयोग किया गया है उस दोहे के माध्यम से उपन्यासकार भारतीय समाज में स्त्रियों की पशु तुल्य स्थिति की करूण कहानी उपन्यास में कहता है।

उपन्यास में स्त्री समस्या आज के स्त्री विमर्श के दायरे से बाहर है जिसमें स्त्रियां अपने सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक व साहित्यिक बराबरी की मांग करती हैं। मेवाती स्त्रियां तो अपनी यौन शुचिता, अपने लिए परिवार में एक जगह की मांग करती है ताकि इनको दो जून की रोटी आराम से मिल सके। इनकी लड़ाई किसी बाहरी संस्था से नहीं बल्कि परिवार के ही सदस्यों से है जो अपनी ही बहू बेटियों के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण

नहीं रखते हैं। ये स्त्रियां परिवार नामक संस्था को फालतू नहीं मानतीं बल्कि परिवार को बचाने के लिए अपना शोषण तक सहन करती रहती हैं और हर हालत में उसे बचाने का प्रयास करती हैं। इनकी लड़ाई है तो सिर्फ इतनी कि परिवार में उनको एक रक्षणीय व सम्मानीय स्थान मिले।

उपन्यास की शुरूआत असगरी के बेटे फत्तू द्वारा असगरी के गहने लेकर फरार होने की घटना से होता है। फत्तू भागकर जमना पार (U.P.) चला जाता है और वहां से एक लड़की को भगाकर अपने साथ लाता है जिसका असली नाम चन्द्रकला होता है। मेवात में उसे 'पारो' कहते हैं चूंकि वह जमना पार से भगाकर लाई गई है इसलिए उसका नाम पारो हो जाता है। पारो का फत्तू के साथ आने का कारण अपने ही पिता द्वारा यौन उत्पीड़न करना है। उसका घर स्त्रियों के यौन शोषण का अड्डा है। पिता अपनी ही पुत्रवधु का यौन शोषण करता है तथा पुत्री का भी, इसलिए पारो फत्तू को एकमात्र सहारा पाकर उसके साथ भाग आती है।

उपन्यास में केवल पारो ही नहीं बल्कि जुम्मी, हसीना आदि भी ऐसी ही स्त्रियां हैं जो अपने ही परिवार में अपने ही ससुर द्वारा बलात्कृत होती हैं। उपन्यास को पढ़ते हुए 'इमराना' केस की याद का ताजा हो जाना स्वाभाविक है। उपन्यास के केन्द्र में हवेली है जो एक प्रतीक है – पुरानी व परम्परागत मानसिकता का, सारे घिनौने कृत्यों का, जो नयी हवा के झोंको के साथ छीजने व ढ़हने को तैयार है। जरूरत है तो सिर्फ एक झोंकें की जो उसको ढ़हा सके। ऐसा ही एक झोंका आता है शकीला के रूप में जो हवेली की स्त्रियों को साथ लेकर शक्तिशाली बनता है लेकिन वह झोंका भी इतना शक्तिशाली नहीं है कि हवेली को गिरा सके, वह केवल उसे हिला पाता है उसे गिराने के लिए अभी और ताकत व जोश की जरूरत है।

'काला पहाड़' में जहां हैदराबाद से सुलेमान अपने लिए लड़की लाता है वहीं 'बाबल तेरा देस में' में हैदराबाद, बिहार, उत्तर प्रदेश आदि राज्यों से लड़कियाँ लाकर उनकी खरीद–फरोख्त का पनपता व्यवसाय दिखाया गया है। उपन्यास में दीन मोहम्मद अपने लिए तो शकीला को लाता ही है लेकिन औरों के लिए भी पैसे ले–लेकर हैदराबाद से स्त्रियां लाता है। हैदराबाद आदि जगहों से लाई गई स्त्रियों की स्थिति यहां बदतर होती है और वे एक 'मुहाज़िर' जैसी जिन्दगी जीते हुए देखी जाती है। 'लेकिन...' कहानी की जुलेखा व 'काला पहाड़' की मेमन क्रमशः प्रताड़ित व विधवा होकर वापिस उनके घर भेज दी जाती हैं। लेकिन 'बाबल तेरा देस में' की समीना वापिस न लौटकर कटी पतंग सी एक दूसरे के

हाथों पड़ती हुई प्रताड़ित होती रहती हैं ज़ाहिर है यहाँ पहुँचते–पहुँचते उपन्यासकार समझ जाता है कि वापिस हैदराबाद अपने घरवालों के पास जाने पर ऐसी स्त्रियों की स्थिति और भी बदतर होती है। वे तो पहले ही उनको एक बोझ समझकर, पैसों के लालच में अनजान लोगों के पल्लू बांध कर अपना पिंड छुड़ा लेते हैं।

'काला पहाड़' उपन्यास में लेखक ने मेवात में हैदराबाद आदि जगहों से औरते लाने के इतिहास का विवरण दिया है। "दरअसल, सुलेमान ने यह कोई ऐसा कृत्य नहीं किया जिसको लेकर ऐसी हाय तौबा मचाई जाए। यहाँ हर बरस न जाने कितने सुलेमानों के घर में हैदराबाद, बिहार, असम से कितनी मेमन दाखिल होती है।"[50] मेवात के विदुर या दिलफेंक किस्म के इंसान हैदराबाद से स्त्रियां लाने का काम करते हैं। मेव इस मामले में 'इस्लाम में चार निकाह के जायज होने' का तर्क देते हैं। जहां तक इन औरतों की बात है तो ये ज्यादातर कम उम्र की कमसिन लड़कियां होती हैं। जिनके माँ–बाप इतने गरीब होते हैं कि न तो इन्हें पाल–पोस सकते हैं न ही इनका विवाह कर सकते हैं। लिहाजा मेवात आदि जगह से पहुँचे लोग उन्हें खुदा की इनायत जैसे लगने लगते हैं और वे निकाह के नाम पर अपनी लड़कियों को इन उम्र दराज लोगों के पल्ले बांधकर छुट्टी पा लेते हैं। ये औरते न केवल घर में बल्कि बाहर भी असम्बद्धता की शिकार होती है। कई बार इन्हे 'यूज एण्ड थ्रो' की स्थिति से भी गुजरना पड़ता है।

'बाबल तेरा देस में' आए 'मेव कस्टमरी लॉ' से सम्बन्धित प्रसंग भी महत्त्वपूर्ण है। 'काला पहाड़' में सुलेमान की विधवा, मेमन को व 'बाबल तेरा देस में' की शकीला, रहीसन (नसीब खां की पुत्री) को क्रमशः उनके पति व पिता की जमीन–जायदाद में से कुछ भी हक नहीं मिलता है। इसका कारण केवल यह नहीं है कि वे बाहर से लाई गई स्त्रियां हैं बल्कि इसका कारण मेवात पंचायत का अपना कानून 'मेव कस्टमरी लॉ' है। 'काला पहाड़' की मेमन को सुलेमान की जमीन से अधिकार दिलवाने के लिए सलेमी भरसक प्रयास करता है लेकिन सब व्यर्थ रहता है। इसी तरह शकीला का साथ नसीब खां, दादी जैतूनी आदि देते हैं लेकिन इस मेव कस्टमरी लॉ के सामने उनकी एक नहीं चलती है।

मोरवाल के इस उपन्यास में धर्म की आड़ में स्त्री के खिलाफ रचे गए प्रपंचों पर भी एक तीखा विमर्श है। समाज में स्त्रियों की दीन दशा का कारण केवल पुरुष ही नहीं है बल्कि पुरुष सत्ता द्वारा रचा गया स्त्री विमर्श व उपदेश सम्बन्धी धार्मिक साहित्य भी है।

'बहिश्ती ज़ेवर' दस्तरूल मुत्तक़ी फ़ी अहकामिन्न–बिट्टिय जैसी इस्लामी शरीयत की पुस्तकों के साथ साथ हिन्दुओं के धर्मशास्त्र की भी उपन्यासकार अच्छी खबर लेता है।

सभी धर्मों के धार्मिक ग्रंथों से उपन्यासकार इसी निष्कर्ष पर पहुँचता है "इन धर्म ग्रंथों की स्त्री अस्तित्व/व्यक्तित्व विरोधी नीति निर्धारण पद्धति में पुरुष वर्चस्वता की संकल्पना अन्तर्निहित है। कहीं संकेतो में तो कहीं–कहीं स्पष्टतः शब्दार्थ में।[51] सभी धर्मों ने पुरुषों को तो अकूत सत्ता व शक्तियाँ दी है लेकिन स्त्रियों को नहीं ज़ाहिर है यह सब प्राचीन काल से चली आ रही पुरुष सत्तात्मक व्यवस्था की ओर इशारा करता है। धार्मिक पुस्तकें भी अधिकतर पुरुषों द्वारा ही लिखी गई होने के कारण उसमें पुरुष विरोधी स्वर का अभाव है। अगर स्त्रियां इस पुरुष सत्तात्मक व्यवस्था से विद्रोह करती हैं तो उनकी जिन्दगी खराब होती है क्योंकि वे उस समाज की स्त्रियां नहीं है जो सब कुछ (घर–परिवार) त्यागकर मुक्त भोग की जिन्दगी जी सके। इस समाज की स्त्रियों को तो एक सहारा चाहिए। यही कारण है कि शकीला, मुमताज, मैना आदि स्त्रियाँ पुरुष सत्तात्मक व्यवस्था से विद्रोह करती हुई भी अपनी भलाई उसके अनुसार अपने आपको ढ़ालने में ही समझती हैं। वे उसी व्यवस्था में ढ़ल भी जाती हैं क्योंकि स्थितियां अभी ऐसी नहीं हैं कि वे उस व्यवस्था को पूर्ण रूप से बदल सकें। उस व्यवस्था को बदलने के लिए तो उन्हें अपना बलिदान देना होगा और शायद इतना साहस इस समाज की इन भोली व निरीह महिलाओं में नहीं है।

मेवात में जैसे जैसे धर्म (इस्लाम) के प्रति आस्था बढ़ती जा रही है वैसे–वैसे स्त्री की स्थिति बद से बदतर होती जा रही है। इसका एक ताजा उदाहरण है, मेवों में तलाक की बढ़ती प्रवृत्ति। मुसलमानों की तरह मेवों में 'तलाक–तलाक–तलाक' कहकर अपनी बीवियों को छोड़ने की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। तलाक की प्रवृत्ति मेवात में हाल ही में बढ़ने लगी है इसलिए मोरवाल ने इस समस्या को पहले के साहित्य में नहीं उठाया क्योंकि आज से पाँच–सात साल पहले तक मेवात में यह समस्या नहीं के बराबर थी। मेवों में भी वहां निवास करने वाली अन्य जातियों की तरह ही विवाह को जन्म जन्मान्तर का रिश्ता माना जाता था लेकिन हाल के वर्षों में तलाक के बहुत से मामले सामने आए हैं। उपन्यास 'बाबल तेरा देस में' में 'तलाक–तलाक–तलाक' द्वारा उत्पीड़ित कई स्त्रियां हैं। इनमें शगुफ्ता, समीना, मुमताज आदि स्त्रियाँ है। जैनब इस दहलीज तक पहुँचते–पहुँचते बच जाती है। मेवात में तलाक के कारण बाल विवाह, दहेज प्रथा जैसी सामाजिक बुराइयाँ

हैं। चूंकि मेवों में ज्यादातर बाल विवाह ही होते हैं इसलिए विवाह के समय वर–वधू को इतनी समझ नहीं होती कि वो एक दूसरे को समझ सके। अतः उनका पूर्ण विकास होने तक और उनमें परिपक्वता आनेतक उनके सन्तान भी हो जाती हैं। अगर लड़का बड़ा होकर नौकरी पा जाता है तो दहेज के लालच में व पढ़ी लिखी बीवी के मोह में अपनी पहले वाली बीवी से छुटकारा तलाक द्वारा ही पाता है। यहां तलाक भी शरीयत व हदीस के अनुसार न होकर एक ही समय में तीन बार तलाक बोलकर तलाक की प्रक्रिया सम्पन्न मान ली जाती है। स्त्रियों को तलाक देने का अधिकार इस समाज में नहीं है।

हाल ही में (नवम्बर 2006) आया शिया मुस्लिम लॉ बोर्ड का निकाहनामा इस बात की पुष्टि करता है कि मेवों के साथ–साथ सम्पूर्ण मुस्लिम समाज में न तो तलाक की प्रक्रिया ही उचित है और न ही निकाह का स्वरूप। इस निकाहनामा में तलाक की प्रक्रिया व स्त्री को भी तलाक का अधिकार देना बहुत हद तक स्त्रियों की दशा सुधारने में कामयाबी का कदम प्रतीत हो सकता है। उपन्यासकार अपने उपन्यास में तलाक के प्रसंगों द्वारा जिस 'उचित निकाहनामा' की मांग प्रस्तुत करते नज़र आते है वह बहुत हद तक शिया मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड के निकाहनामा के द्वारा पूरी हो जाती है, लेकिन समस्या यह है कि मेवात समाज में निकाहनामा को लागू कौन करेगा ? वहां तो पहले से जो प्रक्रिया चली आ रही है लोग उसको छोड़ना ही नहीं चाहते क्योंकि वह पुरुषों के पक्ष में है। मेवात समाज इतना बन्द समाज है कि वहां की स्त्रियों को तो पता भी नहीं होगा कि मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड का कोई 'निकाहनामा' भी आया है।

'बाबल तेरा देस में' उपन्यास भारतीय जनतंत्र की उस व्यवस्था पर भी व्यंग्य करता है जिसके तहत 'पंचायती राज व्यवस्था' में स्त्रियों का आरक्षण तो होता है परन्तु उनके सरपंच बन जाने पर सरपंची उनके पति करने लगते हैं। इस स्थिति में स्त्री केवल हस्ताक्षर (अँगूठा टेकना) व स्टाम्प–पैड तक ही सीमित रह जाती हैं। उपन्यास की पात्र शकीला जब सरपंच का चुनाव जीतती है तो गांव वाले उसके गले में माला डालने की बजाय उसके पति के गले में माला डालते हैं तथा उसी को सरपंच मानने लगते हैं। मुबीन जैसे शिक्षित लोगों की भी इस संदर्भ में यह मानसिकता है "अरे, सरपंच बणके कौण सी वाहे पंचात करनी है... वाहे कौन सौ पंचन के बीच में जा के बैठणो है। या तो बस नाम की सरपंच रहेगी, सरपंची तो सारी काका दीनू ए करनी है। या हे तो बस कागज–पत्तरन् पे सेन (साइन) करना पडंगा।"[51]

देखा जाए तो मेवात में ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण उत्तर भारत में स्त्री सरपंच इसी स्थिति में आती देखी जाती है। उपन्यासकार मेवात के बहाने सम्पूर्ण उत्तर भारत में विद्यमान पंचायती राजव्यवस्था में स्त्रियों के आरक्षण के बहाने पुरुष वर्चस्वता का यथार्थ ब्यौरा व्यंग्यात्मक ढंग से पेश करता है। भारतीय समाज व्यवस्था में पुरुष वर्चस्वता का यह सबसे बिडम्बनात्मक यथार्थ है जिसमें दस्तखत किसी और का व हुकुम किसी और का चलता है।

'बाबल तेरा देस में' में केवल पितृसत्तात्मक समाज में नारी की समस्या को ही विभिन्न कोणों से नहीं उभारा है बल्कि उस समाज की समस्याओं को भी विभिन्न कोणों से उभारा गया है। 'काला पहाड़' उपन्यास में जहाँ उपन्यासकार मेवात की टूटती हुई ग्रामीण अर्थव्यवस्था, वहाँ विद्यमान आधारभूत सामाजिक ढाँचों के अभाव व बढ़ती साम्प्रदायिकता की समस्या को केन्द्र में रखता है तो 'बाबल तेरा देस में' में उपन्यास मेवात समाज के अन्दर विद्यमान कमियों को भी यथार्थ के धरातल पर रखता है। मेवात में विद्यमान छुआछूत, अज्ञानता, अन्धविश्वास आदि समस्याएँ उस समाज को आज भी अन्दर से खोखला बनाए दे रही हैं।

पीर–फकीरों से सन्तान के लिए गण्डे–ताबीज लेना, छोटी से लेकर बड़ी बीमारी तक के लिए झाड़े लगवाना, नसबन्दी व पोलियो की खुराक लेने को पाप समझा जाना जैसे अंधविश्वास आज भी उस समाज में विद्यमान है। बाल विवाह के साथ–साथ आठ–दस लड़कियों की शादी साथ करना वहाँ आम बात है। लड़की को 'पराया धन' समझा जाने के कारण जनसंख्या में हो रही वृद्धि इस समस्या को और बढ़ा देती है।

उपन्यासकार 'काला पहाड़' के माध्यम से जहां इस तथ्य को रेखांकित करना चाहता है कि वहां आधारभूत सामाजिक ढाँचो की समस्या तो है ही साथ ही इस समाज में आन्तरिक रूप से भी समस्या विद्यमान है जो बहुत गहरे तक अपनी पैठ जमा चुकी है इन समस्याओं को 'काला पहाड़' की अगली कड़ी 'बाबल तेरा देस में' के माध्यम से उपन्यासकार पकड़ता है। 'बाबल तेरा देस में', 'काला पहाड़' के पांच साल बाद लिखा गया है इसलिए इसमें उससे ज्यादा विकसित समाज है। इसमें कूलर है, फ्रीज है, सड़के हैं, एन.जी.ओ. के लोगों की नज़र है। लेकिन अभी वो अन्दरूनी रूप से विकसित नहीं है। आधारभूत समस्या के साथ–साथ वहीं के समाज की आन्तरिक समस्या को सुधारना भी आवश्यक है। शिक्षा–चिकित्सा का प्रचार–प्रसार ही नहीं बल्कि उनकी संस्थाओं को

स्थापित करना भी जरूरी है। तालिमी शिक्षा की बजाय व्यक्तित्व विकास से सम्बन्धित शिक्षा की जरूरत है। 'मुसलमानी' (सुन्नत), 'बकरे की बलि' जैसी प्रथाएं आज भी उस समाज में प्रचलित है जिसमें सुधार व बदलाव की जरूरत है।

हालांकि रचना 'काला पहाड़' की पहले हुई लेकिन जहां तक मेवात के संगठित समाज की बात है वह 'बाबल तेरा देस में' में ज्यादा घनीभूत होकर उभरा है। सलेमी 'काला पहाड़' में सुलेमान की बीवी को उसके पति की जमीन से हक दिलवाने के लिए क्या नहीं करता है। दूसरा प्रसंग सलेमी के विवाह का है, जहां संगठित समाज का चित्रण है। विवाह में दोनों ही समुदाय के लोगों के लिए खाने की अलग व्यवस्था की जाती है। 'बाबल तेरा देस में' में मेवाती समाज ज्यादा घनीभूत होकर उभरा है। यहां विविध प्रसंग है जैसे – त्रिलोकी पंडित की हत्या प्रकरण, संत लालदास की समाधि का दृश्य, मियां बाबा का बकरा करनेका प्रसंग, धनसिंह की पोतियों की शादी का प्रसंग आदि जो मेवात के घनीभूत संगठित समाज का उदाहरण पेश करते हैं। संत लालदास की मजार पर जाकर बत्तो सोचती है "उसने पहली बार जीवन में ऐसा मन्दिर देखा है कि जिसके श्रद्धालु और भक्तजन तो हिन्दू हैं लेकिन मन्दिर के नाम पर यह मस्जिद की इमारत है।[52]

'काला पहाड़' में उपन्यासकार ज्यादा संगठित समाज शायद इसलिए नहीं दिखा पाए कि उसकी मूल समस्या मेवात क्षेत्र में बढ़ती साम्प्रदायिकता को दिखाना था। उपन्यासकार दिखाना चाहता है कि मेवात का स्वभाव तो मूलतः सामासिक ही है लेकिन कुछ बाहरी तत्व उसको छिन्न–भिन्न किए दे रहे हैं। बाबू खां जैसे लोग मूलतः तो उसी समाज में पले–बढ़े हैं लेकिन बाहरी तत्वों के सम्पर्क में आने से साम्प्रदायिक होते जा रहे हैं। बनवारी दिल्ली से साम्प्रदायिक मानसिकता लेकर लौटता है। 'बाबल तेरा देस में' में समाज ज्यादा संगठित इसलिए है कि वहां बाहरी ताकतों का हस्तक्षेप बहुत कम है। इसलिए लोग अपने मूल स्वभाव से बंधे हुए हैं। अगर युनूस मेवात में सैयदों की तरह मोहर्रम मनाता है तो इसलिए कि वह अलीगढ़ विश्वविद्यालय से पढ़कर आया है। लेकिन उसका सैयदों की तरह मोहर्रम मनाना असफल होता है, क्योंकि मेवाती लोग अपने परम्परागत तरीके को त्याग ही नहीं सकते, बाहरी साम्प्रदायिक तरीके को आयत्त करना उनके स्वभाव में ही नहीं है।

मेवाती का खरखरापन हिन्दी साहित्य में पहली बार

मोरवाल के दोनों उपन्यासों के पात्र मेवाती होने के कारण भाषा भी मेवाती ही बोलते हैं। दूसरे शब्दों में हम कह सकते है दोनों उपन्यास मेवाती बोली–बानी में मेवात के लोकरंग के आख्यान हैं। भगवानदास मोरवाल मेवाती भाषा का हिन्दी साहित्य में पहली बार प्रयोग करते हैं। मेवाती भाषा में राजस्थानी, हरियाणवी व व्रज का सम्मिलित रूप विद्यमान है। इस पर जयपुरी व अहीरवाटी का प्रभाव ज्यादा है। सुधीश पचौरी लिखते हैं "यहाँ आपको मेवात के कम से कम सौ नए शब्द मिलेंगे जो ब्रज या राजस्थानी में पहले चलते थे जो अब की नजर हिन्दी में नहीं चलते। यहां हरियाणवी का लट्ठमार खरखरापन मिलेगा जिसे ठेठ हिन्दी कहा जा सकता है जिसका स्वाद अलग है। हरियाणा पहली बार जोरदार ढंग से हिन्दी में दर्ज हुआ है।"[53]

दोनों उपन्यासों की भाषा स्थानीय बोली के रस में पगी होने के कारण पूरे उपन्यास को रसमय बनाए रखती है। स्थानीय बोली के प्रयोग से दोनों उपन्यासों की कथा की विश्वसनीयता भी बढ़ गई है। गाली गाँवों की भाषा का अभिन्न हिस्सा होती है। इन उपन्यासों में भी पात्र खूब गाली देते हैं। राही मासूम रज़ा के 'आधा गांव' में भी गालियों की खूब भरमार है। गाली गांव की संस्कृति का अभिन्न हिस्सा होती है। गांव में ऐसी ही भाषा लोग बोलते हैं। गांव के लोग प्यार में भी गाली देते हैं और गुस्से में भी। यह नागर सभ्यता की दृष्टि से अश्लील लग सकता है लेकिन गांव की भाषा की दृष्टि से नहीं, यह तो वहाँ के लिए आम बात है। अतः लेखक ने अपने पात्रों के माध्यम से गाली निकलवाई है तो वह कथा और पात्रों की विश्वसनीयता को बढ़ाता ही है, उसे बाधित नहीं करता। मेवाती भाषा के जो शब्द कठिन हैं उसका साथ साथ उपन्यासकार फुटनोट भी देता है जिससे भाषा आसान हो गई है।

लोकोक्तियाँ व मुहावरे किसी भी समाज की बोली–बानी के अमूल्य रत्न होते हैं। दोनों ही उपन्यासों में स्थानीय पुट को अधिक गहरा करने के लिए मेवाती भाषा बोली के साथ–साथ स्थानीय लोकोक्तियों व मुहावरों का उपन्यासकार खुलकर प्रयोग करता है। 'जूं के डर सू कोई घाघरी ना छोड़ी जाय', 'बन्दरी का मरणा सू बिरन्दावन कहीं खाली न होए', 'लग जाए तो खाक की ना लगे तो लाख की भी न लगे' जैसी मुहावरेदार अभिव्यक्तियाँ उपन्यासों को अधिक आत्मीय व विश्वसनीय बनाती है।

लोकगीत व लोक वार्तायें (किस्से) भी प्रत्येक अंचल या क्षेत्र विशेष के अलग–अलग होते हैं। लोकगीत व वार्ताओं के माध्यम से उस समाज की संरचना को समझा जा सकता है। मोरवाल के दोनों ही उपन्यासों में विभिन्न अवसरों पर उनकी ही बोली–बानी में विभिन्न प्रकार के लोकगीत आए हैं। किस्सों व लोकवार्ताओं की यहाँ भरमार है। मेवाती जनता किस्सों में रमने वाली जनता है। हसन खां मेवाती का किस्सा, भर्तृहरि का किस्सा, चन्द्रावल गूजरी का किस्सा, सादल्ला, संत लालदास व गुलबदन का किस्सा ऐसे ही प्रचलित व प्रसिद्ध मेवाती किस्से हैं।

इस प्रकार भगवान दास मोरवाल की साहित्यिक यात्रा छोटी होते हुए भी बहुत महत्त्वपूर्ण बन पड़ी है। अधिकतर साहित्य का आधार मेवात समाज होने पर भी समस्या केवल मेवात समाज तक ही सीमित नहीं रह गई है। वे मेवात समाज का तो सर्वाङ्गीण चित्र प्रस्तुत करते ही हैं साथ ही समकालीन देशव्यापी समस्या को भी गहराई से व जड़ से पकड़ते हैं फिर वह चाहे साम्प्रदायिकता की समस्या हो या स्त्री समस्या।

मोरवाल का महत्त्व इस बात में तो है ही कि उनके साहित्य के माध्यम से मेवात समाज का समग्र चित्रण हिन्दी साहित्य में पहली बार हुआ है। वे अपने साहित्य का सृजन उसी समाज की बोली–बानी में भी करते हैं। मेवात अंचल के बहाने वे यदि एक तरफ फणीश्वरनाथ रेणु की आंचलिक परम्परा का निर्वाह करते नज़र आते हैं तो उपन्यासों में उभरी हुई समस्याओं की व्यापकता से प्रेमचन्दीय परम्परा को भी पुष्ट करते हैं।

सन्दर्भ सूची –

1. साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका, प्रो. मैनेजर पाण्डेय, हरियाणा साहित्य अकादमी, चण्डीगढ़, प्रथम संस्करण, पृ. 267–68
2. (सम्पा.) डा. मुंशी खां, चिराग–ए–मेवात, बरवतल की चौकी अलवर, राजस्थान, नवम्बर 1999, पृ. 20
3. मेवाती का उद्‌भव व विकास, डा. महावीर प्रसाद शर्मा, लोक भाषा प्रकाशन, छोटा बाजार, कोटपूतली, राजस्थान, पृ.25
4. मेवात एक खोज : सिद्‌दीक अहमद मेव, प्रकाशन दोहा तालीम समिति, गुडगाँव, हरियाणा, संस्करण 1997, पृ. 31
5. (सं.) राजेन्द्र यादव, हंस, अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली, दिसम्बर 1999, पृ.86
6. काला पहाड़, भगवान दास मोरवाल, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 51 संस्करण 1999, पृ. 94
7. मेवात एक खोज : सिद्‌दीक अहमद मेव, प्रकाशन दोहा तालीम समिति, गुडगाँव, हरियाणा, संस्करण 1997, पृ. 25
8. काला पहाड़, भगवान दास मोरवाल, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 51 संस्करण 1999, पृ. 94
9. मेवात एक खोज : सिद्‌दीक अहमद मेव, प्रकाशन दोहा तालीम समिति, गुडगाँव, हरियाणा, संस्करण 1997, पृ. 9–10
10. काला पहाड़, भगवान दास मोरवाल, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 51 संस्करण 1999, पृ. 17–18
11. वही
12. मेवाती लोक कवि : आशिक बालोत, प्रकाशन रचना, 57 नराणी भवन, चाँदपोल बाजार, जयपुर, राज. पृ. 7
13. अस्सी मॉडल उर्फ सूबेदार (कहानी संग्रह), भगवान दास मोरवाल, प्रवीण प्रकाशन, 1/1079 ई. महरौली, नई दिल्ली–30, पृ. 11
14. वही, पृ. 21
15. वही, पृ. 22
16. वही, पृ. 39

17. अस्सी मॉडल उर्फ सूबेदार (कहानी संग्रह), भगवान दास मोरवाल, प्रवीण प्रकाशन, 1/1079 ई. महरौली, नई दिल्ली–30, पृ. 54

18. वही, पृ. 63

19. वही, पृ. 83

20. वही, पृ. 85

21. वही, पृ. 102

22. वही, पृ. 114

23. वही, पृ. 137

24. वही, भूमिका

25. वही, पृ. 58

26. (सं.) नामवर सिंह, आलोचना, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली–02, जुलाई–सितम्बर 2001, पृ. 80

27. (सं.) राजेन्द्र यादव, हंस, अक्षर प्रकाशन, दिसम्बर 1999, पृ. 85

28. काला पहाड़, भगवान दास मोरवाल, पृ. 22

29. वही, पृ. 30

30. वही, पृ. 31

31. (सं.) नामवर सिंह, आलोचना, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली–02, दिसम्बर 1999

32. काला पहाड़, भगवान दास मोरवाल, पृ. 161

33. भारतीय शासन एवं राजनीति, पुखराज जैन एवं बी.एल. फड़िया, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, 2004

34. वही, पृ. 429

35. वही, पृ. 428

36. काला पहाड़, पृ. 16

37. वही, पृ. 455

38. वही, पृ. 406

39. बाबल तेरा देस में, भगवान दास मोरवाल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली–02, पृ. 317

40. बाबल तेरा देस में, भगवान दास मोरवाल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली–02, पृ. 400

41. (सं.) नामवर सिंह, आलोचना, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली–02, पृ. 233

42. काला पहाड़, पृ. 259

43. (सं.) सत्यप्रकाश मिश्र, माध्यम, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग इलाहाबाद, जनवरी–मार्च 2001, पृ. 36–37

44. काला पहाड़, पृ. 100

45. वही, पृ. 14

46. वही, पृ. 159

47. (सं.) राजेन्द्र यादव, हंस, अक्षर प्रकाशन, दिसम्बर 1999, पृ. 86

48. काला पहाड़, पृ. 147

49. वही, पृ. 276 व बाबल तेरा देस में, शुरुआती पेज

50. काला पहाड़, पृ. 237

51. (सं.) नामवर सिंह, आलोचना, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली–02, सहस्राब्दी अंक, अक्टू–दिसम्बर–2004, जनवरी–मार्च–2005, पृ. 236

52. बाबल तेरा देस में, भगवान दास मोरवाल, राजकमल प्रकाशन, पृ. 81

53. (सं.) राजेन्द्र यादव, हंस, अक्षर प्रकाशन, दिसम्बर 1999 पृ. 86

अध्याय दो

'बाबल तेरा देस में' और मेवाती लोक जीवन के विविध पक्ष

(i) लोक का अभिप्राय

(ii) उपन्यास और लोकजीवन

(iii) 'बाबल तेरा देस में' और मेवाती लोकजीवन के विविध पक्ष –

- मेवात की संश्लिष्ट व यौगिक सामाजिक संरचना
- मेवात के मेले (उर्स) व तीज त्योहार
- मेवात के विवाह आदि संस्कार
- मेवात के धार्मिक रीति–रिवाज (पूजा–पाठ) व सामाजिक परपम्पराएँ
- मेवात के लोकगीत
- मेवात की लोक वार्ताएँ एवं किस्से
- मेवाती दोहा परम्परा
- मेवाती पहेलियाँ
- मेवाती कहावतें एवं मुहावरे
- मेवाती लोक जीवन की भाषा

(i) 'लोक' का अभिप्राय –

'लोक' शब्द संस्कृत के 'लोकृ दर्शने' धातु से 'धञ' प्रत्यय करने पर निष्पन्न हुआ है। इस धातु का अर्थ 'देखना' होता है, जिसका लट् लकार में अन्य पुरुष एक वचन का रूप 'लोकते' है। अतः लोक शब्द का अर्थ हुआ 'देखने वाला'। इस प्रकार वह समस्त जनसमुदाय जो इस कार्य को करता है 'लोक' कहलाएगा। 'लोक' शब्द अत्यंत प्राचीन है। साधारण जनता के अर्थ में इसका प्रयोग ऋग्वेद में अनेक स्थानों पर किया गया है। ऋग्वेद में लोक शब्द के लिए 'जन' का भी प्रयोग उपलब्ध होता है। वैदिक ऋषि कहता है "विश्वामित्र के द्वारा उच्चरित यह ब्रह्म या मंत्र भारत की रक्षा करता है : विश्वामित्रस्य रक्षति ब्रह्मवेदं भारतं जनं"।[1]

उपनिषदों में अनेक स्थानों पर 'लोक' शब्द व्यवहृत हुआ है। 'जैमिनीय उपनिषद' ब्राह्मण में कहा गया है कि "यह लोक अनेक प्रकार से फैला हुआ है। प्रत्येक वस्तु में यह प्रभूत या व्याप्त है। कौन प्रयत्न करके भी इसे पूरी तरह से जान सकता है।"[2]

बहु व्याहितो या अयं बहुत लोकः
क एतद् अस्य पुनरीहितो अयात्।।

महावैयाकरण पाणिनी ने अपनी 'अष्टाध्यायी' में 'लोक' तथा 'सर्वलोक' शब्दों का उल्लेख किया है। पाणिनी वेद से पृथक लोक की सत्ता स्वीकार करते हैं। भरत मुनि ने नाट्यशास्त्र के चौदहवें अध्याय में अनेक नाट्यधर्मी तथा लोकधर्मी प्रवृत्तियों का उल्लेख किया है। महर्षि व्यास ने अपनी शतसाहस्री संहिता की विशेषताओं का वर्णन करते हुए लिखा है "यह ग्रंथ (महाभारत) अज्ञान रूपी अंधकार से अंधे होकर व्यथित लोक (साधारण जनता) की आंखों को ज्ञान रूपी अंजन की शलाका लगाकार खोल देता है।"[3]

अज्ञानतिमिरान्धस्य लोकस्य ड विचेष्टतः।
ज्ञानांजनशलाकाभिनत्रोन्मीलनकारकम।।

भगवदगीता में 'लोक' तथा 'लोक संग्रह' आदि शब्दों का प्रयोग अनेक स्थानों पर किया गया है। भगवान श्रीकृष्ण लोकसंग्रह पर बल देते हुए अर्जुन को उपदेश देते हैं–

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः।
लोकसंग्रहमेवापि संपश्यन् कर्तुमर्हसि।।

कहने की आवश्यकता नहीं है कि यहाँ लोकसंग्रह का अर्थ साधारण जनता का आचरण, व्यवहार तथा आदर्श है।

श्री रामचरित मानस में गोस्वामी तुलसीदास लिखते हैं– कहब लोकमत वेदमत आगम निगम निचोरी।' इसी प्रकार तुलसीदास अच्छे संग से लाभ व बुरे संग से हानि होने की बात करते हुए लिखते हैं "हानि कुसंग सुसंगति लाहू। लोकहुं बेद विदित सब काहू।।"[4]

प्राचीन भारतीय साहित्य के अवलोकन से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि वैदिक काल से ही इस देश में संस्कृति की दो पृथक–पृथक धाराएँ प्रवाहित हो रही थीं। 1. शिष्ट संस्कृति, 2. लोकसंस्कृति। शिष्ट संस्कृति से हमारा अभिप्राय उस अभिजात वर्ग की संस्कृति से है जो कि बौद्धिक विकास के उच्चतम शिखर पर पहुंचा हुआ था जो अपनी प्रतिभा के कारण समाज का अग्रणी और पथप्रदर्शक था तथा जिसकी संस्कृति का स्रोत वेद या शास्त्र था। लोकसंस्कृति से हमारा आशय जनसाधारण की उस संस्कृति से है जो अपनी प्रेरणा लोक से प्राप्त करती थी, जो बौद्धिक धरातल के निम्न स्तर पर उपस्थित थी। यदि ऋग्वेद या अथर्ववेद का सूक्ष्म दृष्टि से अध्ययन किया जाए तो यह पार्थक्य स्पष्ट हो जाता है। ऋग्वेद में यज्ञ–यागादिक विधान पाया जाता है। तो अथर्ववेद में अंध विश्वास, टोना, टोटका, जादू मंत्र आदि का। इस प्रकार ऋग्वेद शिष्ट तथा संस्कृत जन के विचारों की झांकी प्रस्तुत करता है तो अथर्ववेद में लोक संस्कृति का चित्रण उपलब्ध होता है। अतः ये दोनों वेद दो भिन्न संस्कृतियों के प्रतीक हैं।

पंडित हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में यदि हम इन दोनों संस्कृतियों के पार्थक्य को स्पष्ट करना चाहें तो कह सकते हैं "लोक का अर्थ 'जनपद या ग्राम्य' नहीं है बल्कि नगरों व गांवों में फैली हुई वह समूची जनता है, जिनके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं हैं। ये लोग नगर में परिष्कृत, रूचि संपन्न तथा सुसंस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा अधिक सरल और अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं और परिष्कृत रूचि वाले लोगों की समूची विलासिता और सुकुमारिता को जीवित रखने के लिए जो भी वस्तुएं आवश्यक होती है, उनको उत्पन्न करते हैं।"[5]

हिन्दी भाषा व साहित्य में 'लोक' व 'लोक संस्कृति' शब्द अंग्रेजी के 'फोक' व 'फोकलोर' शब्दों के पर्याय के रूप में प्रयोग किए जाते हैं। इसमें 'फोक' शब्द का अर्थ लोक के संदर्भ में वही है जिसकी ओर हजारी प्रसाद द्विवेदी उपर्युक्त पैरा में संकेत करते हैं। 'फोकलोर' शब्द के लिए 'लोक संस्कृति' हिन्दी भाषा व साहित्य में सबसे समीचीन शब्द है।

लोकसंस्कृति के अन्तर्गत जनजीवन से संबंधित जितने आचार–विचार, विधि–निषेध, विश्वास, प्रथा, परम्परा, धर्म, अनुष्ठान, आदि सभी आ जाते हैं।

"सोफिया बर्न ने फोकलोर के विषय को तीन भागों में विभक्त किया है–: 1. लोक विश्वास और अंध परम्पराएं 2. रीति–रिवाज तथा प्रथाएं 3. लोक साहित्य।"[6] प्रथम श्रेणी के अंतर्गत पृथ्वी तथा आकाश 'वनस्पति जगत, पशु जगत, मानव मनुष्य निर्मित वस्तु, भाषा तथा परलोक, शकुन, अपशकुन, जादू–टोना आदि से संबंधित लोक विश्वास और परम्पराएं आती हैं। दूसरी श्रेणी में व्यवसाय, उद्योग–धंधे, व्रत–त्योहार आदि से संबंधित रीति–रिवाजों का समावेश होता है। तीसरी श्रेणी में लोकगीत, लोककथाएं, कहावतें, पहेलियां, सूक्तियां, आदि अंतर्भुक्त हैं।

लोक संस्कृति नागर या शिष्ट सभ्यता से अलग लोकजीवन से उत्पन्न होकर जन–जन के श्रम से सिंचित होती हुई प्रकृति की गोद में पलती व पनपती हैं। मानव का मानव के प्रति प्रेम ही लोकजीवन का साध्य रहा है, जिससे लोकसंस्कृति अपने उन्नत रूप में पहुंचती है। जन–जन के बीच विद्यमान विभिन्न कलाओं के बीच वह प्रवाहित होती रहती है। इसमें नई व पुरानी दृश्टियों का मेल भी होता है, जिससे इसमें एक गतिशीलता बनी रहती है। ऐसी स्थिति में लोक जीवन व लोकसंस्कृति का अध्ययन करते समय पुराने से नए तत्वों को, रूढ़ियों से जीवंत परम्पराओं को और फलीभूति अभिरुचि से नई संवेदनशीलता को अलगाना भी आवश्यक होता है।

वर्तमान में विकसित किसी भी देश की संस्कृति का मूल उद्‌गम वहाँ का लोकजीवन ही होता है। जिसमें पूंजीवादी समाज के द्वारा निर्मित मूल्यों का स्थान नगण्य होता है। लोक जीवन का रस ही समाज की जड़ों को सींचता है। आज का मनुष्य जिस तरह की मनुष्यता को खोज रहा है, वह उसे लोकसंस्कृत के विकास में ही उपलब्ध हो सकती है। लोकजीवन अत्यंत सहज, स्वतः स्फूर्त होता है। यह स्वतः स्फूर्तता, सहजता उस समाज के रीति–रिवाज, गीतों और सामाजिक विधि विधानों की मानसिकता में निहित है।

(ii) उपन्यास और लोकजीवन

उपन्यास आधुनिक युग की एक महत्वपूर्ण विधा है। साहित्य के रूप व संरचना का विकास समाज के विकास व संरचना के साथ गहरे रूप से जुड़ा होता है। यही कारण है जहाँ

प्राचीन सामंती समाज के विकास के दौर में महाकाव्य का जन्म व विकास हुआ तो आधुनिक लोकतांत्रिक व पूंजीवादी समाज में उपन्यास का– जिसे पूंजीवादी युग का महाकाव्य भी कहा जाता है। उपन्यास विधा लोक के ज्यादा करीब होती है, क्योंकि वहाँ न तो कविता की तरह आत्मपरकता की फिसलन होती है और न ही नाटक का निषेध– अनिषेध या यथार्थ का मायालोक ही।

उपन्यास में लोक किसी न किसी रूप में उपस्थित रहता है। उपन्यास लोक की उपेक्षा करके लिखा ही नहीं जा सकता। उपन्यास का स्वभाव ही लोक की तरह स्वरों की विविधता वाला होता है। अगर हम भारतीय संदर्भ में देखें तो उपन्यास का आगमन अंग्रेजों की दासता के समय हुआ जिसके लिए उपन्यास को लम्बे समय तक संघर्ष करना पड़ा। आरंभिक भारतीय उपन्यासों ने अपना आधार लोक जीवन को ही बनाया। तत्कालीन समय समाज की सच्चाई का बयान करना, उसको यथार्थ रूप में जनता के सामने पेश करना उनका उद्देश्य रहा। फकीर मोहन सेनापति 'छमाड़ आठ गुंठ' बंकिमचंद्र चटर्जी का 'आनन्दमठ, श्रद्धाराम फिल्लौरी का 'परीक्षागुरू' आदि ऐसे ही प्रारंभिक उपन्यास हैं, जिनमें लोक किसी न किसी रूप में विद्यमान है।

लोक, उपन्यास में उसी तरह होता है जिस तरह सागर में लहर। किसी उपन्यास में वह ज्यादा मुखर होता है तो किसी में छिपे रूप से। हिन्दी उपन्यासों में लोक का पूर्ण रूप से उदय 20वीं सदी के प्रारंभ में उभरकर सामने आया। 'नूतन ब्रह्मचारी (बालकृष्ण भट्ट) 'ठेठ हिन्दी का ठाठ' (अयोध्या सिंह उपध्याय हरिऔध), से होकर प्रेमचंद के उपन्यासों में लोक अपने चरम पर पहुंचा। प्रेमचंद के बाद जयशंकर प्रसाद, हजारी प्रसाद द्विवेदी, भगवतीचरण वर्मा, नागार्जुन, फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यास उपन्यास व लोकजीवन के गहरे संबंध के अद्भुत उदाहरण हैं।

प्रेमचंद जिस समय व समाज में जी रहे थे, उसमें सामंती व्यवस्था व मूल्यों का प्रभाव था। जनता दो पाटों के बीच पिस रही थी। एक तरफ औपनिवेशिक व्यवस्था का शोषणचक्र था तो दूसरी तरफ समाज की बुराइयां। प्रेमचंद अपने उपन्यासों में इन दोनों पाटों का यथार्थ चित्रण करते हैं। प्रेमचंद दिखाते हैं कि किस तरह भारतीय जनता औपनिवेशिक व्यवस्था के साथ–साथ सामाजिक बुराइयों के जाल में भी बुरी तरह फंसी हुई है। किसान चूंकि भारतीय समाज का मेरूदंड था फिर वह भला कैसे रह पाता इस लोक विधा से बाहर। किसान एक तरफ जमींदारों

के शोषण में पिस रहा था तो दूसरी तरफ अंग्रेजी राज की औपनिवेशिकता का शिकार हो रहा था। प्रेमचंद के उपन्यास न केवल भारतीय किसानों की दुर्दशा व दयनीय हालत का यथार्थ चित्रण करने हैं बल्कि तत्कालीन समाज के पूंजीवादी व सामंती व्यवस्था के गठबंधन को भी अपने उपन्यासों में दिखाते है। चूंकि "उपन्यास वास्तविक लोक जीवन और लोक व्यवहार का एक वास्तविक चित्र है और उसमें उस काल का भी प्रतिबिम्ब पाया जाता है, जिसमें वह लिखा जाता है।"[7] इसलिए उपन्यास में लोक जीवन के साथ–साथ उस समय की बदलती परिस्थितियों का भी यथार्थ चित्रण होता है जो प्रेमचंद के उपन्यासों में सामंती व पूंजीवादी व्यवस्था के गठजोड़ के माध्यम से दिखाई देता है।

उपन्यास में लोक का स्वरूप कैसा भी हो सकता है। ग्रामीण परिवेश के माध्यम से यह व्यक्त हो या शहरी परिवेश के माध्यम से। ग्रामीण परिवेश को आधार बनाकर लिखे गए उपन्यासों में लोक ज्यादा मुखर होकर प्रातिनिधिक रूप में व्यक्त होता है, जबकि शहरी परिवेश को आधार बनाकर लिखे गए उपन्यासों में भी लोक होता है। जिस शहरी इलाके के कथानक को आधार बनाया जा रहा है वहाँ के लोगों की आशा–अकांक्षा, रीति–रिवाज, धर्म–संस्कृति आदि उपन्यास के माध्यम से प्रकट होती है, और उस समाज के लोक का सृजन करती है। उपन्यास के बारे में रैल्फ फॉक्स ने लिखा है "उपन्यास केवल मात्र कथात्मक गद्य नहीं है, वह मानव के जीवन का गद्य है– ऐसी पहली कला है जो सम्पूर्ण मानव को लेकर उसे अभिव्यक्ति प्रदान करने की चेष्टा करती है।"[8] उपन्यास का यह मानव और उसका जीवन कहीं का भी हो सकता है गांव का या शहर का।

हिन्दी सहित्य में हजारी प्रसाद द्विवेदी, जयशंकर प्रसाद, यशपाल, भगवतीचरण वर्मा आदि उपन्यासकारों ने स्वतंत्रता से पूर्व अपने उपन्यासों में लोक रचा तो नागार्जुन, फणीश्वरनाथ रेणु, रांगेय राघव, अमृतलाल नागर, राही मासूम रजा, विवेकी राय, रामदरस मिश्र, जगदीशचन्द्र माथुर, अब्दुल्ल विस्मिल्लाह आदि उपन्यासकारों ने स्वतंत्रता के बाद अपने उपन्यासों में लोक की सृजना की।

उपन्यास का लोक जीवन से प्रत्यक्ष संबंध के कारण उपन्यासकार का दायित्व भी अन्य लेखकों की अपेक्षा अधिक होता है। क्योंकि लोकजीवन का चित्रण अर्थपूर्ण तब बनता है जब उपन्यासकार लोकजीवन को निकट से जाने। साथ ही वह लोक जीवन में निहित विभिन्न लोकाचारों, व्यवहारों, लोक विश्वासों, मान्यताओं से पूर्ण परिचित हो। रैल्फ फॉक्स लिखते हैं

"उपन्यास का पलड़ा इस मायने में सदा भारी रहेगा कि वह मानव का कहीं अधिक पूर्ण चित्र प्रस्तुत कर सकता है तथा उस महत्त्वपूर्ण आंतरिक जीवन की झांकी दिखा सकता है जो कि मानव के निरे नाटकीय क्रियाशील रूप से भिन्न होती है और जो सिनेमा की क्षमता से बाहर की चीज है।"[9] उपन्यासकार में मानव जीवन के साथ–साथ उसके आंतरिक जीवन की झांकी दिखा सकने की क्षमता भी विद्यमान होनी चाहिए।

उपन्यासकार को उपन्यास में वर्तमान जीवन की परम्पराएं किस प्रकार पिछली परम्पराओं व मान्यताओं को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से जुड़ी हुई है। इन सबका विवेचन करने के साथ–साथ उस जन जीवन की भाशा, वेशभूषा, उत्पादन के साधन, वर्ग, जाति, धार्मिक विश्वास, खान–पान, उत्सव समारोह, भौगोलिक स्थिति व बदलते सामाजिक मूल्यों की जानकारी भी आवश्यक होती है।

लोक में जिस तरह विविध छवियां होती हैं ठीक उसी प्रकार उपन्यास में भी साहित्य की सारी छवियों को सन्निहित कर लेने की शक्ति होती है। उपन्यास में कथा तो है ही साथ ही साथ अवसर–अवसर पर वह काव्य की सी भावुकता व संवेदना जगाकर पाठकों को बांधे रखता है। निबंध की तरह प्रश्नों पर विचार भी करता चलता है। इसमें नाटक की तरह संवाद योजना होती है। उपन्यास के लिए नाटक, काव्य, कहानी या निबंध की तरह विस्तार की कोई सीमा नहीं बांधी गई। वह जितना चाहे संगठित रूप से जीवन की व्यापकता को समेट सकता है।

उपन्यास और लोक जीवन के संबंध के पक्ष में एक तर्क यह भी दिया जा सकता है कि इसमें जनसाधारण की कथा होने के कारण यह अत्याधुनिक विधाओं में सर्वाधिक पढ़ी जाने वाली विधा है। उपन्यास के कारण साहित्य के पाठक समुदाय का विकास हुआ। साहित्य केवल शिष्ट जनों के विशिष्ट मनोरंजन का साधन नहीं रह गया है। साहित्य साधारण से साधारण व्यक्ति का अपना, उसकी आकांक्षा का हो गया। प्रेमचंद ने सर्वप्रथम उपन्यास के लाखों पाठक पैदा किए क्योंकि प्रेमचंद के उपन्यास जनसाधारण की आकांक्षा का साहित्य था। प्रेमचंद की इन्ही विशेषताओं की ओर संकेत करते हुए पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते है।– "अगर कोई उत्तर भारत की समस्त जनता के आचार–विचार, भाव–भाषा, रहन–सहन, आशा–अकांक्षा, दुःख–सुख और सूझ–बूझ को जानना चाहे तो प्रेमचंद से अधिक उत्तम परिचायक इस युग में नहीं पा सकेगा।"[10]

इस प्रकार उपन्यास व लोक जीवन का गहरा संबंध है। उपन्यास में लोक की अभिव्यक्ति होती है, वह उपन्यास का एक अहम हिस्सा होता है। यह अलग बात है कि उपन्यास में लोक किस तरह व किस प्रकार अपनी अभिव्यक्ति पाता है। फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यासों की तरह या फिर प्रेमचंद के उपन्यासों की तरह।

(iii) 'बाबल तेरा देस में' और मेवाती लोक जीवन के विविध पक्ष –

भगवानदास मोरवाल ने अपने उपन्यास 'बाबल तेरा देस में' के कथानक का आधार राजस्थान, हरियाणा और उत्तर प्रदेश के सीमांत क्षेत्र में स्थित मेवात समाज को बनाया है। मेवात समाज में हिन्दू व मुस्लिम दोनों ही समुदाय के लोग संगठित व घुल–मिलकर रहते हैं जो सामासिक संस्कृति की मिसाल पेश करते हैं। इस समाज के अपने रीति–रिवाज, तीज–त्योहार, लोक कथाएं, लोकगीत हैं। मेवात समाज की भौगोलिक, सामाजिक व सांस्कृतिक संरचना की चर्चा प्रथम अध्याय में की जा चुकी है। अतः यहाँ हम सीधे मेवाती लोकजीवन के विविध पक्षों पर प्रकाश डाल रहे हैं। 'बाबल तेरा देस में' के संदर्भ में मेवाती जीवन के विविध पक्षों को हम निम्न प्रकार चित्रित कर सकते हैं।

मेवात की संश्लिष्ट व यौगिक सामाजिक संरचना

मेवात समाज किसानी समाज है। इसका प्रत्येक परिवार किसी न किसी रूप में एक–दूसरे से जुड़ा हुआ है। मेवात समाज के गांव का प्रत्येक परिवार एक–दूसरे से इस कदर जुड़ा हुआ है कि एक परिवार की खबर दूसरे परिवार से होती हुई पूरे गाँव में सरकंडे की फुनगी में लगी आग की तरह तुरंत फैल जाती है। मेवात समाज का प्रत्येक व्यक्ति एक–दूसरे के दुःख–दर्द में शामिल होकर उसे दूर करने की भरपूर कोशिश करता है। एक आदमी या परिवार की समस्या उस आदमी या परिवार तक सीमित नहीं रहती बल्कि वह समस्या पूरे गांव की समस्या होती है। असगरी का पुत्र फतह मोहम्मद जब अपनी मां के सारे गहने लेकर फरार हो जाता है तो गांव का प्रत्येक व्यक्ति उसे यही समझाता है "असगरी बाबली होगी है! तैने ई कैसे सोचली के हम तोसू अलग है। घबराए मत, लीली छतरी वालो सब ठीक कर देयगो।"[11]

मेवात समाज में अनेक जातियाँ निवास करती हैं। यहाँ मेवजाति का बाहुल्य है लेकिन अन्य जातियां भी हैं जैसे कुम्हार, चमार, ब्राह्मण, यादव, राजपूत, जाट, नाई आदि। इन

सब जातियों के व्यक्तियों की पहचान जाति से नहीं बल्कि 'मेवाती' से होती है। वे किसी भी समस्या को एक साथ मिलकर सुलझाते हैं। तिरलोकी जाति से ब्राह्मण है, उसकी हत्या किसी के द्वारा कर दी जाती है लेकिन पुलिस से लेकर उसकी विधवा पत्नी को आर्थिक मदद देने तक सभी समस्या का निदान पूरा मेवाती समाज मिलकर करता है। जब पुलिस को रिश्वत देने की बात आती है तो मेवात समाज की एकता देखते ही बनती है। "धनसिंह ने तुरंत अपनी जेब से सौ रुपए निकाले और दीना को दे दिए। गिरधारी ने पांच सौ, जलेख खां ने तीन सौ, इस तरह देखते ही देखते पांच हजार रुपये कब इकट्ठे हो गए, किसी को पता ही नहीं चला।"[12]

उपन्यास में आई 'कचैड़ी' को गांव का पंचायत घर कह सकते हैं। इस कचैड़ी में पूरे गांव की समस्याएं आती हैं और सभी लोग मिलकर उसे हल करने का प्रयास करते हैं। हीरा के जीजा जगन प्रसाद के द्वारा हीरा की लड़कियों की जबरदस्ती शादी करने की समस्या का हल कचैडी के माध्यम से ही होता है। मेवात समाज की सामूहिकता की ओर संकेत करता हुआ वली मोहम्मद हीरा से कहता है "देख भई काका, कौशल्या और रामरती तिहारी ही बेटी ना हैं, या मुहल्ला और गांवा बस्ती की भी बेटी हैं। अब तैने ई बात बता दी है तो चाहे लाह्स बिछ जाएँ, जग्गी आंख तो उठा के देख जाए।"[13]

एक–दूसरे की बहन–बेटियों को अपनी बहन–बेटी के समान समझना मेवात के संश्लिष्ट समाज की विषेशता है। उनकी इज्जत–आबरू की रक्षा करना वे अपना कर्त्तव्य समझते हैं। उपन्यास का सबसे दकियानूसी चरित्र चांदमल भी हीरा की लड़कियों की जबरदस्ती शादी कराने वाले जगनप्रसाद को कहता है "सुन रे रिश्तेदार, या भरोसा में मत रहियो के ये दोनूं बाप–बेटा इकला हैं एक बात और ध्यान में धर लेके ये छोरी सिर्फ हीरा की ना हैं, पूरा गाँवों की हैं। अगर अब की बार मूं सु ऐसी बात निकाली तो लाह्स बिछ जांगी।"[14]

समाज केवल पुरुषों से ही नहीं बनता उसमें स्त्रियों की भी उतनी ही भागीदारी होती है। ठीक इसी प्रकार मेवात समाज की स्त्रियां भी वहाँ के लोगों की समस्या को हल करने में समान रूप से भागीदार होती हैं। दादी जैतूनी, असगरी, जुम्मी शकीला आदि ऐसी ही स्त्री पात्र हैं जो पुरुषों के साथ बराबर हिस्सा लेकर समस्याओं का समाधान करती है। दादी जैतूनी द्वारा बत्ता की लड़कियों को मेवणी की पोशाक पहना कर उन्हें पुलिस के चंगुल से निकालना, उनकी शादी में 'बिचौलन' का काम करना, मैना पिटाई के समय समस्या का हल करना ऐसे ही प्रसंग हैं जिसमें स्त्रियां भी पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर गांव के लोगों के दुःख–दर्द को दूर करने में हिस्सा बांटती हैं।

मेवात समाज के लोक जिस तरह एक–दूसरे की समस्या को अपनी समस्या मानकर हल करते हैं ठीक उसी तरह यहाँ दो भिन्न धर्मावलम्बी होने के बावजूद भी यह ख्याल ही नहीं आता कि ये भिन्न धर्मावलम्बी लोग हैं। यहाँ के तीज–त्योहारों में व रीति–रिवाजों में इतनी समानता है कि उनको अलगाना मुश्किल है। होली–दिवाली आदि पर्व दोनों ही समुदाय के लोग हँसी–खुशी से मनाते हैं। यहाँ के देवी–देवता पर किसी धर्म का लेबल चस्पा नहीं किया जा सकता, वो तो सबके हैं। 'जाकी असीस लग जाए वही असली देवता है।' यह मान्यता है वहाँ के लोगों की। लालदास का मंदिर एक ऐसा ही उदाहरण है। मुस्लिम लोग उन्हें लाल खां के नाम से पुकारते हैं तो हिन्दू लोग लालदास के नाम से। इन्हें मेवात का कबीर कहा जाता है। उपन्यासकार उसके मंदिर का वर्णन उसकी सामसिकता के संदर्भ में करते हुए लिखता है "उसने पहली बार जीवन में ऐसा मंदिर देखा है कि जिसके श्रद्धालु और भक्तजन तो हिन्दू हैं लेकिन मंदिर के नाम पे यह मस्जिद की इमारत है।"[15] उन्हें इस बात से कोई मतलब नहीं है कि देवी–देवता हिन्दू है या मेव बल्कि उन्हें 'आसीस लगने' से मतलब है।

पीरों की मजारों पर सभी धर्म के लोग गलेपी चढ़ाते हैं। मियां बाबा केवल मेवों का नहीं बल्कि सभी का है, पचपीर व मंगलवार का प्रसाद सभी लोग श्रद्धा से बांटते हैं। ताजिया निकालते समय वहाँ प्रत्येक वर्ण–वर्ग के लोग उसके नीचे से स्वस्थ्य रहने की कामना से निकलते हैं। अगर ताजिया निकालने में कोई समस्या आ रही है तो उसका हल किया जाता है। टीकम द्वारा अपने बिजली के तार को यह कहते हुए काट दिया जाता है "तार का क्या वह तो फिर जुड़ जाएगा, लेकिन ताजिया जरूर निकलना चाहिए।"[16] ऐसा है वहाँ का समाज जहाँ अगर एक दूसरे के तीज त्योहारों में कोई समस्या आती है तो मिलकर उसका समाधान किया जाता है। मेवात समाज के इसी चरित्र के संदर्भ में संजीव लिखते हैं "यह केवल धार्मिक सद्भाव और सहिष्णुता की मिसाल नहीं है। सद्भाव व सहिष्णुता जैसे सरलीकृत प्रत्ययों से इस धार्मिक साझेपन को नहीं समझा जा सकता। यह विशाल भारतीय श्रमशील लोक की वह असल धर्म निरपेक्षता है, जो ईश्वर और अल्लाह को सांचों या खांचों में नहीं बंटने देती।"[17]

हिन्दी प्रदेश में संभवतः यह अकेला ऐसा समाज है जो इतना संगुफित व समेकित है। सामासिक संस्कृति आज भी यहाँ अपने जीवंत रूप में विद्यमान है। इसका कारण चाहे मेवों का पहले हिन्दू होना हो या कुछ और, लेकिन आज भी ये अपनी सामासिक संस्कृति को बचाए हुए है। इनमें रोजा, नमाज, खतना, निकाह, हज आदि छोटी–मोटी मुस्लिम परम्पराओं के अलावा

चाकपूजा, शादी में गोत्र बचाने की परम्परा, हिन्दू देवी–देवताओं में विवास करना, शादी में बायणा–घिराई, मुंह–दिखाई, खोड़िया, पैर दबाना आदि परम्परायें हिन्दुओं के बहुत नजदीक है। उपन्यास की पात्र शकीला का यह कथन अनायास ही नहीं है कि "अपने आपको मुसलमान कहने वाले ये लोग अभी भी कौन सी दुनिया में रहते हैं"[18] क्योंकि वहाँ के मुस्लिम धर्मावलम्बी–मेव, शकीला के हैदराबादी मुसलमानों से एकदम अलग हैं।

मेवात समाज की संश्लिष्टता का आलम यह है कि वहाँ की कुछ रस्म दोनों समुदायों के सहयोग के बिना संभव ही नहीं हो सकती है। चूहड़ सिद्ध महाराज की पूजा में दोनों समुदायों का सहयोग जरूरी है, क्योंकि बकरे की बलि बिना मेवों के सहयोग के संभव नहीं है। मियां बाबा को खुष करने के लिए बकरे की बलि की आवश्यकता होती है, जिसमें बकरे को काटने से पहले पढ़ा जाने वाला बिस्मिलाह फकीरों या दरबेशों से पढ़ाया जाता है तथा बकरे को काटने का काम भी अधिकतर मेव ही करते हैं। जगनन्नाथ जी की रथयात्रा व पच पीर पर गलेपी चढ़ाने की रस्म भी दोनों के सहयोग से ही संभव है।

मेवात के मेले (उर्स) व तीज–त्योहार

भारत देश ग्राम प्रधान देश है। भारत की जनसंख्या का अधिकाश भाग गाँवों में निवास करता है। भारत को मेले और त्योहारों का देश कहा जाता है। फिर भला मेवात समाज इससे अछूता कैसे रह सकता है। यहाँ तो सबसे ज्यादा तीज–त्योहार व मेले होते हैं। कभी मेवों के तो कभी हिन्दुओं के।

मेवात समाज उत्सव धर्मी समाज है। यहाँ के जीवन में हमेशा ताजगी बनी रहती है। इस ताजगी का एक कारण यहाँ लगने वाले उर्स एवं मेले हैं। मेले लगने का कारण कोई देवी–देवता हो सकता है या किसी सिद्ध पुरुष की याद। देवी–देवता का संबंध किसी भी समुदाय से हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है। मेलों में सभी लोग मिलकर भाग लेते हैं

संत लाल दास का मेला मेवात का प्रसिद्ध मेला है। लाल दास को मेवात का कबीर कहा जाता है, जिसकी याद में यह मेला लगता है। लोक कथा के अनुसार संत लाल दास का जन्म एक मेव परिवार में हुआ था, जो लकड़ी बेचने का काम करता था। संत लाल दास को वहाँ के लोग एक अलौकिक शक्ति संपन्न पुरुष मानते हैं। जिसकी अलौकिकता के बारे में अनेक किस्से–कहानियां उस समाज में विद्यमान हैं। उपन्यास में आया साहूकार मोदी सहाय की नाव को मझधार में डूबने से बचाने का किस्सा ऐसा ही है।

संत लाल दास का मेला जहाँ लगता है वह स्थान अलवर के उत्तर में कुछ दूरी पर है, जिसे 'धौली दूब' के नाम से जाना जाता है। यहाँ बाबा की मजार है, जिसमें न रोली है न घड़ियाल, न भजन–कीर्तन है न दीया–बाती। मेले के आयोजन में सभी लोग हिस्सा लेते हैं। बाबा की मजार सामासिक–संस्कृति के रूप में बनाई है, जिसकी बनावट मंदिरनुमा मस्जिद है।

मेवात का दूसरा प्रसिद्ध मेला चूहड़ सिद्ध महाराज का मेला है। यह मेला सिद्ध पुरुष चूहड़ के नाम से अलवर जिले के डहरा शाहपुर के पश्चिम में पहाड़ियों में लगता है। चूहड़ सिद्ध महाराज के संदर्भ में संत लाल दास की तरह ही अलौकिक शक्ति से संपन्न किस्से व कहानियां इस समाज में विद्यमान हैं। चूहड़ सिद्ध के मेले में भी दोनों ही समुदाय के लोग अपनी सांस्कृतिक वेश–भूषा का पूरा बाना धारण करके जाते हैं। चूहड़ सिद्ध के मेले में बकरे की बलि देने की पुरानी परम्परा है, जिससे चूहड़ सिद्ध का भोग लगाया जाता है।

थानागाजी का भर्तृहरि का मेला, अलवर की जगन्नाथ की रथयात्रा, झिरका फिरोजपुर का रावण, आल्दूका की बूढ़ी तीज, होडल की सती, नई की नवमी, हथीन की गूदड़ी आदि भी मेवात के प्रसिद्ध मेले हैं।

मेवात के मेलों में लोग टैम्पुओं, ट्रैक्टरों, जीपों व जुगाड़ों से जाते हैं। मेलों में मिठाइयों व खिलौनों के बाजार सजते हैं। मेलों में कई प्रकार के खेलों व तमाशों का आयोजन होता है। मदारी का खेल, जादूगर का खेल व कामड़ा (दंगल) प्रमुख खेल हैं।

मेवात में निकलने वाला ताजिया भी प्रसिद्ध है। ताजिये में लड़कियां व औरतें हब्दा गाती हैं तथा नौजवान पट्ठेबाजी का प्रदर्शन करते हैं। उपन्यासकार पट्ठेबाजी का चित्रण बहुत सजीव ढंग से कुछ इस प्रकार करता है– "इसी बीच दूसरा प्रतिद्वंदी भी बीच घेरे में आ पहुंचा। दोनों पट्ठेबाजों का पहले एक–दूसरे से मुसाफ़्हा कराया गया। तब कहीं जाकर पट्ठेबाजी की विधिवत शुरुआत हुई। दोनों ने पहले देर तक एक–दूसरे के वारों से बचते हुए आपस की कमजोरियों को भांपा। फिर आंखों ही आंखों में कदमों की चाल को परखा। नसीब खां अपने प्रतिद्वंदी को देर तक छकाता रहा और कैद करता रहा अपने मस्तिष्क में कि कहाँ से वार किया जाए अपने प्रतिद्वंदी पर– दायें से या बायें से, ऊपर से या नीचे से, इसी बीच नसीब खां के प्रतिद्वंदी का वार नसीब खां के पट्ठे की मूठ पर इतना तेज पड़ा कि नसीब खां बिलबिला उठा। 'कट' की आवाज सुनकर लगा जैसे वार मूठ से ढंकी अंगुलियों पर नहीं बेंत के पट्टे पर पड़ा है, बस यही वार निर्णायक साबित हुआ। इसके बाद तो नसीब खां ने अपने प्रतिद्वंदी को दम

नहीं लेने दिया। नहीं समझ पाया नसीब खां का प्रतिद्वंदी कि वह कैसे तो इन वारों से बचे और कैसे नसीब खां पर पलटवार करे। वह बगल को बचाता तो सिर पर वार। सिर को बचाता तो कंधे पर। कंधे को बचाता तो बाजू पर। अंततः हार मानते हुए जमीन पर रख दिया नसीब खां के प्रतिद्वंदी ने अपना पट्टा।''[19]

ताजिये में हब्दा, पट्ठेबाजी का प्रदर्शन तो होता ही है साथ ही सभी लोग समान श्रद्धा से ताजियों के नीचे से निकलते हैं। जिन–जिन के घरों से ताजिया होकर निकलता है वे अपने बच्चों के साथ ताजियों के नीचे से निकलते हैं। ताजिये निकालने की खुशी इतनी होती है कि इसकी तैयारी यहाँ बहुत पहले से शुरू कर दी जाती है। घरों को सजाया जाता है, स्त्रियां बहुत दिन पहले से ही रात–रात भर हब्दा गाती रहती हैं। पुरुष लोग टामक, अलगोजे, व चिकारा (एक तरह का वाद्य यंत्र) की अलग–अलग धुनों पर नाचते रहते हैं। ठीक होली की तरह, जिसमें स्त्रियां होली के बहुत दिन पहले से ही रात–रात भर गीत गाती हैं तथा पुरुष रात में 'सांग' रचाते हैं।

सावन के तीज की तैयारी भी बहुत पहले से शुरू हो जाती है। पेड़ों में रस्सी से झूले डाल दिए जाते हैं। स्त्रियां, बच्चे आदि झूला झूलते हैं। स्त्रियां गीत गाती हुई झूला झूलती हैं। सभी नई नवेली वधुएं तीज के त्योहार पर अपने–अपने पीहर जाती हैं। सावन की तीज के समय में मेवात में भरने वाला आल्दूका की तीज का मेला प्रसिद्ध है। तीज के दिन घर की महिलाएं बेर की झाड़ी में भिगोए हुए चने रोपती हैं, जिसे यहाँ 'बिरवा–बोना' कहा जाता है। बिरबा–बोने के समय स्त्रियां घर–परिवार के मंगल की कामना करती हैं। पुरुष खेल–तमाशों का आयोजन करते हैं, जिसमें मेवात के पारम्परिक खेल जैसे– कबड्डी, दौड़, कुश्ती आदि का आयोजन होता है।

मेवाती समाज में तीज त्योहारों व मेले उत्सवों पर उत्साह–उमंग देखते ही बनता है। दोनों ही समुदायों के लोग इन मेलों व त्योहारों में प्रेम से हिस्सा लेते हैं, जिसके कारण उत्साह और भी दोगुना हो जाता है। यहाँ मेले जहाँ साम्प्रदायिक सौहार्द को बढ़ावा देते हैं, वहीं खुलकर जीने का आनंद भी।

मेवात के विवाह आदि संस्कार

मनुष्य के जीवन में संस्कारों का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। वह जीवनपर्यंत संस्कारों से आबद्ध होकर जीवन को संचालित करता है। भारतीय परम्परा में 'षोडश संस्कार' माने गए हैं। आज इस इन षोडश संस्कार को शायद ही कोई पूर्ण करता हो, ऐसा नहीं लगता क्योंकि

समाज प्राचीन समय से बहुत भिन्न हो गया है। आज कुछ महत्वपूर्ण संस्कार ही मनुष्य पूरा करता है। पुत्र जन्म, चूड़ा कर्म, विवाह, अंत्येष्टि जैसे संस्कार ही आज हमारे समाज में प्रमुख रूप से प्रचलित हैं।

मेवात समाज में प्रमुख संस्कार अपने तरीके से पूर्ण किए जाते हैं। पुत्र जन्म के उत्सव पर होने वाला कुंआ पूजन इसमें प्रमुख है। पुत्र जन्म के दूसरे या तीसरे दिन पुत्र का पिता पंडित जी या मौलवी से पुत्र का नामकरण कराता है तथा छठें दिन पुत्र की 'छठवीं' मनाई जाती है। कुआं पूजन समारोह के दिन परिवार वाले पुत्र जन्म की खुशी में भोज करते हैं जिसमें मित्रगणों व गांव वालो को निमंत्रित किया जाता है। पुत्र की मां के पीहर से 'छूछक' लाया जाता है जिसमें पुत्र व उसकी मां के लिए कपड़े लत्ते आदि लाए जाते हैं। कुंआ पूजन की रात को 'मंडली' आदि का तमाशा होता है।

विवाह संस्कार मेवात समाज का दूसरा प्रमुख संस्कार है। शादी से पहले 'बिचौला या बिचौलन' लड़का–लड़की को देखते हैं, बिचौला या बिचौलन उस पुरुष व स्त्री को कहा जाता है जिसके माध्यम से शादी तय होती है। लड़का या लड़की पसंद आने पर उसको पैसे, कपड़े आदि देकर 'रोक' दिया जाता है। लड़की को रोकना 'गोद भराई' कहलाता है तथा लड़के को रोकना 'टीका' कहलाता है। उपन्यास में दादी जैतूनी के माध्यम से बिचौलन के महत्व को रेखांकित किया गया है। बिचौला या बिचौलन की जिम्मेवारी केवल विवाह तक ही नहीं होती है, बल्कि शादी के बाद भी यदि कोई समस्या आती है तो बिचौला ही उसे हल करने में मदद करता है। शादी में कितना दहेज दिया जाना है, बारात कब आनी है, कितने आदमी बारात में आने हैं आदि सब बिचौले के माध्यम से ही तय होता है।

विवाह अगर लड़की का है तो एक दिन पहले और अगर लड़के का है तो दो दिन पहले 'चाक–पूजा' होती है। जिस घर में शादी होती है, उस घर की व पास–पड़ोस की सभी स्त्रियां गीत गाती हुई गांव के कुम्हार के घर जाकर चाक की कच्चे धागे आदि बांधकर पूजा करती हैं तथा मिट्टी के खाली बर्तन लेकर कुंए की ओर लोकगीत गाती हुई जाती हैं। कुंए से मिट्टी के बर्तनों में पानी भरकर वापस घर की ओर गीत गाती हुई आती हैं। चाक पूजा के बारे में भी इस समाज में अनेक किंवदंतियां है। एक किंवदंती के अनुसार चाक ब्रह्मा का स्वरूप है तथा चाक ही ब्रह्मा की पहली सृष्टि।

चाक पूजा के दूसरे दिन या उसी दिन 'भात भराई' की रस्म पूरी होती है। भात भराई

की रस्म शादी वाले लड़की–लड़के के ननिहाल वाले पूरी करते हैं। इस रस्म में लड़के–लड़की का मामा आदि लड़के या लड़की की माँ को 'चूंदड़ी' उढ़ाता है तथा थाली में कुछ नगद पैसे भी डालता है, ताकि शादी में आर्थिक सहायता मिल सके। भात भराई के लिए लड़के या लड़की की माँ अपने पीहर वालों को निमंत्रण देने जाती है, जिसे 'भात–न्यौतना' कहा जाता है। भात न्यौतने के समय लड़के–लड़की की माँ अपने पीहर जाकर पास के किसी घर में बैठ जाती है तथा उसके पीहर के घर की स्त्रियां गीत गाती हुई उसको लेने आती हैं।

शादी के पांच–सात दिन पहले जिसकी शादी होती है, उसका 'बान–बैठ' जाता है। 'बान–बैठने' का मतलब उबटन आदि से स्नान करना तथा घर से बाहर, गांव आदि में घूमना बंद कर दिया जाता है। शादी से सात या नौ दिन पहले लड़के का 'लग्न' आता है जिसमें लड़की वालों की तरफ से पीली चिट्ठी भेजी जाती है। जिसमें विवाह का लग्न मुर्हुत आदि लिखा रहता है। गाँव का ब्राह्मण या नाई लग्न पढ़ता है। लग्न में विवाह की पीली चिट्ठी के साथ–साथ लड़के के कपड़े, दहेज का सामान आदि भी दिया जाता है। लग्न के दिन से ही स्त्रियां विवाह की रात तक गीत गाती हैं, जिसे 'बनवारा निकालना' कहा जाता है।

शादी के दिन लड़का बारात ले जाने की तैयारी करता है। बारात जाने से पहले लड़का अपने गाँव के सभी धार्मिक पूजा–स्थलों पर माथा टेकता है तथा स्त्रियां उस पर पैसों का वार–फेर करती हैं, जिसे 'जुहारी' करना कहा जाता है। फिर अपनी माँ से विदा लेकर दूल्हा–दुल्हन को लाने चला जाता है। बारात में केवल पुरुष और बच्चे ही जाते हैं। स्त्रियों के जाने का प्रचलन यहाँ नहीं है। बारात जाने की रात को लड़के के यहाँ 'खोड़िया' होता है, जिसमें स्त्रियां पुरुषों का वेश बनाकर सांग करती हैं।

लड़की की शादी में यहाँ कन्यादान का प्रचलन है। कन्यादान में 'चढ़ाऊ' व 'आवता' दोनों देना होता है। चढ़ाऊ मेवात समाज में न्यौता परम्परा के तहत विवाह पक्ष को न्यौते के रूप में दिए जाने वाला वह पैसा होता है, जो कभी उसके द्वारा दिया गया था। आवता के रूप में वह पैसा वापिस मिलता है। जितना न्यौता देने वाला अपनी मर्जी से चढ़ाऊ के रूप में देता है। कन्यादान में नगद रुपयों के साथ बर्तन आदि भी दिए जाते हैं। पारों '51 रुपयों के साथ पांच बर्तन देती है'[20] दादी जैतूनी '101 रुपया और एक जोड़ी चुटकी डालती है'[21] रात को 'फेरों' व 'निकाहनामा' की रस्म पूरी होती है। हिन्दू जातियों में जहाँ पंडित फेरे करवाता है, वहीं मेवों में मौलवी कबूलनामा पढ़वाता है।

शादी में दुल्हन को विदा करते समय प्रत्येक बाराती को सम्मान के रूप में कुछ पैसे दिए जाते हैं। लड़के के दादा को जलेबी की माला पहनाकर व कुछ पैसे देकर विदा किया जाता है। दुल्हन की विदा के समय उसकी फूफियां रथ, बहली या कार के सामने खड़ी हो जाती हैं, जिसे 'जूड़ा– घिराई' कहा जाता है। वर पक्ष के लोग इन्हें दान में नगद रुपये देते हैं। इसके पश्चात दूल्हन की सहेलियां गाड़ी की टायर पर पानी डालकर गीत गाती हुई दूल्हन को विदा करती हैं। इस प्रकार दूल्हन एक अजनबी के साथ अन्जान गांव, घर परिवार में शामिल होने के लिए चली जाती है।

दूल्हे के घर पहुंचने पर उसकी बहन घर के दरवाजे पर खड़ी होकर उनका स्वागत करती है, जिसे 'बायणा–घिराई' कहा जाता है। दूल्हा इसे नगद दान देकर दूल्हन को गृह प्रवेश कराता है। अब दूल्हे पक्ष की औरतें गीत गाती हुईं दूल्हन का स्वागत करती हैं। उसके पैरों में पानी डालती हैं तथा उसके सिर पर पानी का लोटा रखती हैं, जिसमें पीपल के पत्ते आदि रखे होते हैं।

दूल्हन के ससुराल आने के दूसरे दिन 'मुंह दिखाई' की रस्म अदा होती है। इसमें गांव की स्त्रियां दूल्हन का मुंह देखती हैं तथा उसको कुछ नगद पैसे व आभूषण देती हैं।

मेवात समाज में चूंकि शादी अधिकतर बाल्यावस्था में हो जाती है, इसलिए गौना षादी के कई वर्षों बाद होता है, जिसे यहाँ 'खंदावा' कहा जाता है। उपन्यास में चाहे मैना का गौना हो या मुबारक अली का गौना। दोनों का ही गौना शादी के कई वर्षों बाद होता है, क्योंकि शादी के समय उनकी उम्र बहुत कम होती है। इस समाज में शादी केवल एक साथ एक लड़की की ही नहीं बल्कि एक ही साथ अनेक लड़कियों की शादी की जाती है। उपन्यास में बत्तो अपनी तीनों लड़कियों की शादी एक साथ एक ही परिवार में करती है।

विवाह यहाँ सभी समुदायों में गोत्र बचाकर किए जाते हैं। बचाए जाने वाले गोत्रों में मां, दादी, नानी व खुद का गोत्र होता है। अर्थात लड़की अपनी मां, दादी, नानी व खुद के गोत्र में शादी नहीं कर सकती।

'सुन्नत' परम्परा भी मेवात का एक प्रमुख संस्कार है जो यहाँ मेव जाति में पाया जाता है। मेवों के यहाँ बच्चे की 'मुसलमानी' को सुन्नत कहा जाता है। सुन्नत के दिन घर–परिवार में खुशी का माहौल होता है। घर को लीपा–पोता जाता है। सुन्नत संस्कार पांच

या सात वर्श की उम्र में किया जाता है। सुन्नत के समय स्त्रियां सुन्नत गीत गाती हैं और गांव का नाई बच्चे की मुसलमानी करता है। सुन्नत से पहले नाई 'बिस्मिल्लाहिर्रहमानीर्रऽऽहीऽऽम' पढ़ता है तथा बच्चे को बहलाने के लिए टॉफी आदि देता है। सुन्नत के बाद बच्चे की जननेंद्रिय को 'एंटी बायोटिक्स' न लगाकर राख बुरकी जाती है। यह राख तब तक बुरकी जाती है जब तक कि जननेंद्रिय से खून आना बंद नहीं हो जाता है। सुन्नत के बाद गीत गाने वाली महिलाओं व इस समारोह में भाग लेने वाले लोगों को 'बाखली' (उबले हुए गेहूं व चने) या मिठाई बांटी जाती है।

मेवों में जब कोई बुर्जुग मरता है तो उसके उत्तराधिकारी उसकी 'फातिहा' करते हैं। इस अवसर पर सारी बिरादरी को अथवा पूरी मेव कौम (बारह–बावन) को दावत दी जाती है। इस अवसर पर दिवंगत के सबसे बड़े पुत्र के 'पाग' (पगड़ी) बांधी जाती है।

दिवंगत के पुत्र या पुत्रों के ससुराल वाले पगड़ी लेकर आते हैं तथा नगद दान के साथ पगड़ी भेंट करते हैं। मरने वाला यदि अपने गोत्र या पाल का चौधरी है तो उसके बड़े पुत्र को 'चौधर की पाग' बांधी जाती है। निमंत्रण पर आए दूसरे गोत्रों के लोग भी दिवंगत चौधरी के सम्मान में पगड़ियां लेकर आते हैं, जो उसके सबसे बड़े पुत्र को बारी–बारी से बांधी जाती है। इस अवसर पर 'धड़ियों' व 'मणो' तक का दान दिया जाता है। मेवों के अलावा पगड़ी बांधने की रस्म दूसरी जातियों में भी विद्यमान है लेकिन इन जातियों में इसे फातिहा न कहकर 'मोहर्चा' करना कहा जाता है।

मेवात के धार्मिक रीति–रिवाज, पूजा–पाठ व सामाजिक परम्पराएँ

भारत की अधिकांश जनसंख्या आस्तिक है जो अपने कार्य की सिद्धि व विपत्ति के समय अपने आराध्य देव की पूजा–पाठ करती है। इतना ही नहीं बल्कि कार्य सिद्धि हो जाने पर अपने आराध्य को खुश करने के लिए उसका भंडारा, रोठ या भोज भी करती है। मेवात समाज भी आस्तिक समाज है जिसके अपने स्थानीय देवी–देवता हैं। इस समाज में इन देवी–देवताओं की प्रत्येक दिन पूजा–पाठ होती है। कार्य सिद्धि होने पर इनका रोठ भी किया जाता है। यहाँ देवी–देवताओं पर किसी समुदाय विशेष का अधिकार नहीं है, बल्कि वे पूरे मेवात के देवी–देवता हैं।

'खेड़ादेवत माई' मेवात की अपनी स्थानीय देवी माँ है। खेड़ादेवत माई की पूजा सप्ताह में दो दिन सोमवार व शुक्रवार को होती है। खेड़ादेवत माई की पूजा के लिए 'कढ़ाई'

उतारी जाती है। कढ़ाई उतारने से तात्पर्य पूरी, पुए व हलुवा बनाने से है। कढ़ाई उतारने के बाद खेड़ादेवत माई के पूजा स्थान पर लोग कढ़ाई का सामान लेकर जाते हैं। "मंजी हुई थाली में आठ पुए, तेल से भरे दीए में डूबी हुई रुई की बाती, माचिस, सिन्दूर और मंजे हुए लोटे में खेड़ादेवत माई के लिए ताजा पानी कुछ तो आँच का टुकड़ा भी साथ लेकर आते हैं। वैसे भी इस ग्राम देवी की मानता है क्या, क्या मांगती है यह– गुड़ और सरसो के तेल में बने सिर्फ आठ पुए।"[22] ये सभी सामान ले जाकर लोग खेड़ादेवत माई के स्थान पर ज्योति जलाकर चिंगारी पर तब तक तेल के छींटे मारते हैं जब तक कि चिंगारी से अग्नि प्रज्ज्वलित न हो जाए। अग्नि के प्रज्ज्वलित होने पर उस पर पुए आदि पूजा की सामग्री से छोटे–छोटे टुकड़े तोड़कर रखे जाते हैं। इसके बाद साथ लाए लोटे के पानी से मां की पूजा की जाती है। देवी माँ की पूजा के बाद 'घरवात' जिमाया जाता है। घरवात जिमाने से तात्पर्य घर के दरवाजों की सारी चौखटों पर पूजा की सामग्री में से भोग लगाना है। इसके बाद घर के सदस्य खाना खाते हैं। देवी माँ की पूजा व घरवात जिमाने के पहले घरवालों का खाना खाना पाप समझा जाता है।

मियां बाबा मेवात का स्थानीय देवता है। मियां बाबा की पूजा कभी–कभी ही लोग कार्य सिद्धि होने पर करते हैं। इसकी पूजा के लिए 'बकरे का रोठ' किया जाता है। किसी फकीर या दरवेश से बिस्मिल्लाह पढ़वाकर बकरे को काटा जाता है। उसके बाद बकरे का मांस पकाकर बाबा की पूजा के लिए दरवेश को बुलाया जाता है। मियां बाबा की पूजा का तरीका कुछ इस प्रकार है "पांच ढूमरियों में उठवाई भरी जाने लगी। हरेक ढूमरी में दो फुलके, उनके ऊपर आधा चम्मच रंधा हुआ बाजरा, आधा चम्मच कढ़ी, दो पूए तथा कड़ाह में से एल्मीनियम के भगोने में से अलग से निकालकर रख दी गई मीट में से एक–एक बोटी तथा शोरबे की बूंदे टपका दी गई।"[23] पूजा के बाद फकीर दुआ पढ़ता है और दुआ के साथ भोग की प्रक्रिया संपन्न होती है। इसके पष्चात ढूमरियों आदि पूजा की सामग्री को फकीर, परिजनों व सगे संबंधियों में बांटी जाती है।

'दरुद–फातेहा' की परम्परा भी मेवात में काफी प्राचीन है। प्रत्येक जुम्मे रात (बृहस्पतिवार) को घरों में खीर बनाई जाती है। सबसे पहले गाँव का फकीर खीर खाता है तथा एक ढमला (मिट्टी का विशेष प्रकार का कटोरा) भरकर वह अपने घर ले जाता है। उसके बाद घर के लोग खाना खाते हैं।

दरुद अक्सर स्वर्गवासी बुजुर्गों की आत्मा की शांति की नियति से लगवाई जाती है।

कई बार कोई पशु दूध न दे तो भी दरुद लगवाई जाती है। दरुद सोमवार व बृहस्पतिवार को लगाई जाती है। सोमवार को सुबह व बृहस्पतिवार को शाम को दरुद लगाई जाती है।

पचपीर मेवात में पंजपीर को कहा जाता है। पचपीर अथवा सैयद की कब्रें मेवात के लगभग हर गांव में पाई जाती है। इनके प्रति लोगों में काफी सम्मान व श्रद्धा होती है। इन्हें गंदा करना पाप समझा जाता है। गांव के फकीर लोग इनकी साफ–सफाई का विशेष ध्यान रखते हैं। इनके बारे में अनेक करामातें प्रचलित हैं। लोगों का विष्वास है कि इन्हें गंदा करने वाले को ये दंडित करते हैं। प्रत्येक जुम्मेरात को इन कब्रों पर दीया जलाया जाता है तथा माल–पूए व खीर से इनकी पूजा की जाती है। 'भूमियादेव' या भैरो बाबा की समाधि भी मेवात के लगभग प्रत्येक गाँव में पाई जाती है। इन्हें अक्सर कुंओं के पास एक पत्थर गाड़कर भी बना लिया जाता है। लोगों का विष्वास है कि भूमिया देव गांव के लिए भलाई व खुशहाली लाता है। इनकी समाधि पर भी प्रत्येक दिन दीए जलाए जाते हैं और शनिवार के दिन पूए से इनकी पूजा की जाती है।

धार्मिक परम्पराओं के साथ–साथ कुछ सामाजिक परम्परायें भी इस समाज को एक खास पहचान प्रदान करती हैं। नई नवेली दुल्हनों द्वारा वृद्ध स्त्रियों के पैर दबाने की प्रथा इस समाज की सभी जातियों में विद्यमान है। हालांकि भारत के अन्य भाग के मुस्लिमों में पैर दबाने की बजाय मुसाफ्हा (हाथ मिलाना) की परम्परा है लेकिन यहाँ इस्लाम धर्मावलम्बी मेव जाति की स्त्रियां भी हिन्दू जातियों की स्त्रियों की तरह ही पैर दबाती हैं। वृद्ध स्त्रियों के पैर दबाते समय–

तेरा बीरा बणा रहेंऽऽऽ।
तिहारी जोड़ी सलामत रहेऽऽऽ।
तेरी गोद जल्दी हरी होवेऽऽऽ।

जैसे आशीर्वाद प्रदान करती है। उपन्यास की पात्र शकीला समझाती है कि हमारे इस्लाम धर्म में पैरों को छुआ या दबाया नहीं जाता है बल्कि मुसाफ्हा किया जाता है। इस पर दादी जैतूनी कहती है "पर पांव दबाणा बुरी बात कहा है शकीला अब देखे न अगर हमारी बहू–बेटी हिन्दून की बड़ी–बूढ़ीन का पांव दबावे हैं तो उनकी बहू–बेटी भी दबावे हैं हमारा पांव।"[24]

सूर्य या चन्द्र ग्रहण के समय यहाँ भगोने, बर्तन व चिमटे बजाए जाते हैं ताकि दुष्ट आत्माएं भाग जाएं। इस अवसर पर भंगियों को अनाज दिया जाता है। इस विश्वास के साथ कि वे दुष्ट आत्माओं को भगाकर चाँद या सूरज को मुक्ति दिला दें।

लड़के के जन्म के समय उल्टा तवा या कांसे की थाली बजाई जाती है। गांव या मोहल्ले में गुड़ बांटा जाता है। बच्चों के बीच अंतर रखने के लिए जच्चा को पंसेरी (पांच किलो गुड़ की बट्टी) पर बिठाकर नहलाया जाता है। इस विश्वास के साथ कि अगला बच्चा पांच साल के बाद ही होगा।

संतान प्राप्ति के लिए, भूत–प्रेतों व रोगों से छुटकारा पाने के लिए फकीरों व दरवेशों से गंडे–ताबीज लेने की प्रथा भी मेवात समाज की सभी जातियों में समान रूप से प्रचलित है। उपन्यास में कल्लन दरवेश के पास बत्तो, शकीला, सोनदेई, पारो आदि स्त्रियां पुत्र प्राप्ति के लिए 'नक्कस' लेने जाती हैं। ऊपरी हवा (भूत–प्रेत) से रक्षा के लिए मुल्ला–मौलवी द्वारा दिया गया ताबीज लोग अपने गले या बाजू में पहनते हैं।

मेवात में कुछ बीमारियों के लिए 'झाड़े' लगवाने की भी प्रथा है। पीलिया, कनफेड़, गठिया आदि बीमारियों के लिए यहाँ झाड़ा लगवाया जाता है। पीलिया व गठिया के लिए झाड़ा किसी सिद्ध पुरुष या फकीर से लगवाया जाता है तो कनफेड़ के लिए गाँव का कुम्हार अपने बर्तन गढ़ने की थापी से झाड़ा लगाता है, जिसे 'थाप लगाना' भी बोलते हैं। कनफेड़ के झाड़े का सजीव वर्ण उपन्यास में कुछ इस प्रकार है– ''हीरा ने पहले हल्के से आँखों को मूंदा और होठों ही होठों में न जाने क्या बुदबुदाते हुए आँखें खोलकर थापे को जमीन से छुआकर पहली बार बच्ची की कनपटी से लगाया, इस तरह हीरा ने थापे को सात बार जमीन से छुआकर बच्ची की गाल से छुआया।''[25] थापी से सात बार गाल को छुआने पर गाल पर बर्तन बनाने वाली मिट्टी का लेप लगाया जाता है और झाड़ा लगाने वाले कुम्हार को प्रसाद आदि भेंट किया जाता है।

मेवात के लोकगीत

वस्तुतः लोकगीत मानव मन के स्वाभाविक उद्‌गार हैं। लोकगीत जनता की भाषा होते हैं। लोकगीतों को महात्मा गांधी 'हमारी संस्कृति के पहरेदार' मानते हैं। ''लोक जीवन के सुख दुःख, उल्लास–हर्ष, विषाद और संघर्ष को अभिव्यक्त करते हुए लोकगीत कोटि–कोटि हृदयों का प्रतिनिधित्व करते हैं। पनिहारिन और बोझा ढोती हुई स्त्रियों के साथ घर में चक्की

पीसती हुई महिलाओं के सुरीले कंठों में रचे–बसे लोकगीत जन–जीवन में इतने गहरे पैठे हुए हैं कि ये जन–जीवन का अविछिन्न अंग हैं। लोक जीवन के चप्पे–चप्पे में, लम्हे–लम्हे में, पोर–पोर में लोकगीत रचे–बसे हैं। समाज लोकगीतों के दर्पण में अपना प्रतिबिम्ब देखता आया है। लोकगीतों का गाकर व सुनकर किसान, मजदूर अपनी थकान मिटाते हैं। लोकगीतों की यह परम्परा आदिम युग से चली आ रही है, जिससे लोकसंस्कृति अपने मूल रूप से झंकृत होती है। कहना न होगा कि मानव के संस्कारों की व्यंजना इन लोकगीतों में बराबर होती रही है।''[26]

मेवात में लोकगीतों की लंबी परम्परा विद्यमान रही है। इन लोकगीतों में मेवाती समाज–संस्कृति की पहचान दिखाई देती है। मेवाती समाज में लोकगीत हमेशा लोगों की जबान पर चढ़े रहते हैं। मेवात में रतबई, बरेहरित, रसिया, बारहमासी, मेवाती होली, बरसी, फुन्दीया, मोहर्रमी हब्दा, छूछक, भात, विदाई व फसल बोने–काटने के अवसर पर भिन्न–भिन्न तरह के गीत गाये जाते हैं। विषय की दृष्टि से मेवात के लोकगीतों को निम्न प्रकार से बांटा जा सकता है –

1. संस्कार संबंधी गीत 2. ऋतु व पर्व त्योहारों से संबंधी गीत 3. देवी–देवताओं से संबंधी गीत 4. विविध विषयी गीत

1. संस्कार संबंधी गीत– संस्कार संबंधी गीतों में विवाह, सुन्नत, पुत्र जन्म, फातिहा आदि संस्कारों से संबंधित लोकगीत प्रमुख हैं। विवाह संस्कार के समय भिन्न–भिन्न रस्मों जैसे चाक पूजा, भात, घुड़चढ़ी आदि के लिए अलग–अलग लोकगीत गाए जाते हैं। विवाह समारोह पर 'बनवारे' की रस्म पर गाया जाने वाला गीत कुछ इस प्रकार है–

'धौले–धौले चावल, उजलो है भात
उजली बतीसी बनवारो नोतो
मैं तोहे बूझूं मेरे सूघड़ बनड़ा, मेरे चतर बनड़ा
तेरौ बनवारो री, किन्ने नोतो
दादा मेरो राजा, दादी रानी होए
मेरो बनवारो री उन्ने नोतो
बाबा मेरो राजा, माई रानी होए
मेरो बनवारो री उन्ने नोतो।'[27]

'भात' की रस्म के समय गाया जाने वाला लोकगीत अलग होता है। चूंकि भात की रस्म को दूल्हे का मामा पूरा करता है अतः दूल्हे की माँ अपने भाई को ही लोकगीत में संबोधित करती हुई कुछ इस प्रकार कहती है–

'भाई अच्छो भरियो भात, बहाण टोटा में
थाली में डेढ़ हजार मोहर लोटा में
मैं हंसली–कठला, पहल खड़ी कोठा में,
'भाई अच्छो भरियो भात, बहाण टोटा में।'[28]

यहाँ यह भी स्पष्ट कर देना दिलचस्प होगा कि शादी के पन्द्रह–बीस दिन पहले बहनें (दूल्हा व दूल्हन की माताएं) अपने पीहर 'भात न्यौतने' जाती हैं, जिसे भेली ले जाना भी कहा जाता है, क्योंकि वे पांच किलो गुड़ की भेली अपने पीहर वालों के लिए ले जाती हैं। वह इस बात का संकेत होता है कि बहन भात लेकर आई है। इस अवसर का लोकगीत इस प्रकार है –

'के लाडो रूस के आई अम्बरेला।
के आई मिहमान।।
ना बाबुल आई रूस के अम्बरेला।
ना आई मेहमान।।
तेरा नवासा को ब्याह रे अम्बरेला।
मैं आई नौतण बड़ों भात।।''[29]

विवाह में सेहरा बांधते समय के गीत में दूल्हे के साथ उसकी भाभियां आदि मजाक करती हुई गाती हैं –

बनड़ा ए बनड़ी को बड़ो चाव
चल दियो सिखर दुपहरी में
बनड़ा जूता लायो सई सांझ
मोजा लायो दुपहरी में
बनड़ा ये बनड़ी को बड़ो चाव।''[30]

घुड़चढ़ी के समय के गीत में ससुराल जाने व वहाँ से दान–दहेज–दुल्हन लाने की बात कही जाती है –

"लाला रे तेरी बहली, कहान जायगी रे,
बाहण री मेरी बहली ससुराल जाएगी रे।
दान लायगी रे, दहेज लायेगी
या चौधरी की बेटी बिहा ए लाएगी रे।
लाला रे तेरी बहली।"[31]

लड़के के विवाह में बारात जाने के बाद रात को स्त्रियां खेल–तमाशें व 'सांग' करती हैं जिसे 'खोड़िया' कहते हैं। खोड़िया में पुरुषों का प्रवेश निषिद्ध होता है। स्त्रियां विभिन्न प्रकार के वेश धारण करके गांव के पुरुशों की नकल उतारती हैं तथा दूल्हा–दुल्हन बनकर विवाह रचाती हैं। इसमें खोड़िया का लोकगीत निम्न है–

"मेरो कोली गयो बरात, तानो कौण बुणेगो री
मेरा कोली की दूखें आंख, तानों कौण बुणेगो री
मेरो उलझो–उलझो सूत, तानो कौण बुणेगो री
मेरो कोली गयो बरात।"[32]

मेवात समाज की मेव जाति में सुन्नत के समय भी लोकगीत गाया जाता है। इस गीत में सुन्नत करने वाले नाई व जिसकी सुन्नत होती है उन दोनों की चर्चा होती है। इस संस्कार का गीत भी इस प्रकार है –

"नाईड़ा मेरो भाईड़ा, उस्तरो पैनायो रे।
जे नाई तेरा कांपा हाथ, ले अल्ला को नाम रेऽऽ।
नाईड़ा मेरो भाईड़ा
कांई को तेरो उस्तरों, कांई की बगडोर रे
सोना को मेरो उस्तरो, रेसम की बगडोर रे
नाईड़ा मेरो भाईड़ा
लियाकत बेटो लाडलो, जाकी सुन्नत आज रे
जा दिन सू तो हिन्दू हो, हुओ मुसलमान रे
बंधों दीन को सहारों, हुओ मुसलमान रे
नाईड़ा मेरो भाईड़ा, उस्तरो पैनायो रेऽऽ।"[33]

2. पर्व–त्यौहार व ऋतु संबंधी लोकगीत – मेवात समाज में जिस तरह विभिन्न संस्कारों से संबंधित अलग–अलग लोकगीत हैं, उसी प्रकार विभिन्न पर्व–त्योहारों व ऋतुओं के समय में भी अलग–अलग लोकगीत गाए जाते हैं। सावन की तीज में झूले के समय पिता–पुत्री की व्यथा–कथा को लोकगीत के सूत्र में पिरोकर कुछ इस प्रकार गाया जाता है –

आयो बाबल पछेवा को मेह
खड़ी री खड़ी मैं भीजूं बड़ तले
तू कैसे भीजें मेरी लाल
अपने घर बेटी बैठणों
मैं कैसे जाऊं मेरा बाप?
नणदी हठीली तालो जड़ चली
ताला का करूं बारह टूक
नूसठ खोलूं वाकी सांकली
मैं कैसे बडूं मेरा बाप
आगे धरो है बैरी पीसणो
चाखी का करू बारह टूक
बाखल तो बिखेरूं बैरी पीसणों
आयो बाबल पछेवा को मेह री।''[34]

मेवाती लोकगीतों में 'रतवाई' का बड़ा महत्व है। रतवाई उर्दू गजल की तरह गाई जाती है तथा समझदार लोगों में यह बहुत लोकप्रिय है। औरतें इसे मिलकर गाती हैं मगर पुरुष अकेला भी गा लेता है। हाली हल चलाते समय अकेला भी रतवाई गा लेता है।

देवरानी–जेठानी के झगड़े आमतौर पर होते रहते हैं। बहुत छोटी–छोटी बातों पर लड़ बैठना आम बात है मगर अपने पति से अगाध प्रेम मेवाती औरतों की विशेषता है। इसी ओर संकेत करती है यह रतवाई–

''औंडी रोटी घी घणों
खाले मेरा नणदी का बीर
तोमे मेरो जी घणों
औंडी जौल कठौल की

गोदी में ले ले मेरा नणदी का बीर
लावण तो भीजे जोलकी।।"[35]

रतवाई की तरह मेवात में चतुराई (जिनमें मेव योद्धाओं द्वारा लड़े गए युद्धों, उनकी शूरवीरता एवं विजयों का वर्णन होता है), विरहरियत, (ये प्रमुख रूप से वह विरह गीत होते हैं जो प्रिय के बिछुड़ने की याद में गाए जाते हैं), रसिया (ये प्रेम गीत होते हैं जो मेवाती लोक साहित्य की रीढ़ व नौजवानों के दिलों की धड़कन होते हैं) भी गाए जाते हैं। एक चतुराई का उदाहरण निम्न प्रकार है, जिसमें 1857 ई. की क्रांति में मेवों के गाँव रायसीना में अंग्रेजों की हार वर्णन है –

"बंगला में मन न लगे, सूनी दीखां हा सेज।
रायसीना का गोर में, देखा बिना शीश अंग्रेज।।
x x x
उठ री घोर पहाड़ में, बिन्दूकन को शोर।
रायसीना का बिलौण्डा को, है कलकत्ता तक शोर।।"[36]

मेवाती समाज में 'बारहमासी' भी बहुत लोक प्रसिद्ध है, जिसमें बारहों महीनों का वर्णन होता है। वैसे बारहमासी किसी एक ऋतु पर गायी जा सकती है। जैसे ग्रीष्म ऋतु पर–

"गरमी तेरी रुत बुरी, बाहर सोणों होय।
छूटे पसीना अंग सू, पिया बुरी बतावे मोय।।"[37]

इसी प्रकार वर्षा ऋतु के संबंध में –

चौमासा की रुत भली, भीतर सोणों होय।
जाड़ो भरे शरीर में, पिया गले लगावे मोय।।"[38]

होली भारत का प्रसिद्ध त्योहार है। फाग के दिन में होली का रंग भला किसे नहीं रंगता है। बरसाने की लट्ठमार होली पूरे भारत में प्रसिद्ध है। प्रेम व सद्भावना का त्योहार होली मेवात को भी अपने रंग में रंगता है। होली आने के महीनों पहले से ही होली गाने की परम्परा वर्षों से रही है। वैसे तो होली स्त्री–पुरुषों की टीमों के बीच हँसी–मजाक की प्रतिस्पर्धात्मक रूप में गायी जाती है मगर पुरुषों की टीमें भी आपस में मुकाबला करती हैं। स्त्रियां इकट्ठी होकर भी होली गाती हैं। जैसे –

"ना कोई तेरो कुटम–कबीला, मात–पिता ना भाई है
ना कोई तेरो बेटा–बेटी, ना संग चले लुगाई है
रोवे पीटे रुदन मचावे, बिछट चलो मेरो घर को
सुमरन कर बंदा हर को।
चार सख्स याहे लेके चालां, बना काठ की डोली है
जंगल में तो जाये उतारो, फूंक दई फागन की सी होली है
कोई–कोई जले आग की झल में काई कू बास कबर को
सुमरन कर बंदा हर को।।"[39]

3. देवी–देवताओं से संबंधित लोकगीत – मेवात में वहाँ के स्थानीय देवी–देवताओ के लिए भी अलग–अलग लोकगीत हैं। संत भर्तृहरि, लाल दास, पचपीर, राम–लक्ष्मण, हनुमान जी, भैरव बाबा आदि से संबंधित अलग–अलग गीत हैं। इन गीतों को यहाँ भजन कहा जाता है। मेवात का प्रसिद्ध भजन जिसे 'काला पहाड़' उपन्यास में पचपीर पर गलेपी चढ़ाए जाने के समय गाया जाता है।

"राम और लिच्छमन दसरथ के बेटे
दोनों बनखंड जाए
एक बन, दो बन, तीने बन में प्यास लगी
ना वां कुआं, ना जोहड़
हर के घर से उठी बदरिया
बरसे मूसलदार
भर गए कुआं, भर गए जोहड़, भर गए समंद–तालाब
हेरीऽऽ कोई राम मिले भगवान
छोटा सा छोरा गउ चरावे
पानी प्यावे नंदलाल
हेरीऽऽ कोई राम मिले भगवान।"[40]

यही मेवाती लोक जीवन है, जिसके लोकगीतों में भी सामासिक संस्कृति के दर्शन होते हैं। गलेपी पचपीर को चढ़ाई जाती है, लेकिन लोकगीत के माध्यम से राम, लक्ष्मण व नंदलाल को याद किया जाता है।

इसी प्रकार 'सपूत बाबा' के लिए 'सपूत बाबा तूनै मसल नुवांऊं।' गीत भी मेवात का प्रसिद्ध गीत है। भर्तृहरि व हनुमान जी के लिए भी अलग–अलग लोकगीत हैं, जिनमें मेवाती लोग अपने दुःख दर्दों को दूर करने की विनती करते हैं तथा उनको खुश करने के लिए रोठ या भोज बोलते हैं।

4. विविध विषयों से संबंधित लोकगीत – उपर्युक्त विषयों के अलावा भी यहाँ लोकगीत गाये जाते हैं, जिनका विषय माहौल को खुशनुमा बनाने के लिए होता है। पनिहारिन का अपना अलग लोकगीत है । फसल बोते व काटते समय का अलग लोकगीत। पनिहारिन के प्रसिद्ध लोकगीत की कुछ पंक्तियां इस प्रकार हैं–

'मेरा सिर पे बंटा टोकणीं
मेरा हाथों में नेझू डोर
मैं पतली सी कामिनी।'

फसल बोने के समय का लोकगीत जिसमें एक पत्नी अपने पति से जेवर बनवाने की बात कहती है, कुछ इस प्रकार है–

''ना चहिया तेरा झूमका, न बाली, न हार।
रेशम की कुड़ती सिवा, ऊपर बटन लगा।।
मेरी भायेली पे सोने की जंजीर,
बटण मोपे चांदी की।
लंबी पाटी हल चले, लम्बो गैरूं बीज।
अबके सम्मत होण दें तोलू घड़वा दू ताबीज।।
तेरी भायेली पे सोने की जंजीर,
बटन तोपे चांदी की।''[41]

इस प्रकार किसी भी लोक के लोकगीतों की तरह मेवात के लोकगीत भी यहाँ के लोक जीवन की अमूल्य निधि हैं। यहाँ के लोकगीतों को सभी समुदाय के लोग परस्पर मिलकर गाते हैं। किसी लोकगीत पर किसी समुदाय विशेष का लेबल चस्पा नहीं किया जा सकता। होली व तीज के गीत जिस प्रकार हिन्दू जातियां गाती हैं, उसी प्रकार मेव जाति भी तथा हब्दा व मोहर्रमी में भी सभी जातियां बढ़–चढ़कर भाग लेती हैं।

मेवाती लोकवार्ताएं व किस्से

लोकवार्ता, लोक जीवन व लोक साहित्य का हृदय होती है, जिनमें मानव जीवन के विभिन्न रूपों, मान्यताओं तथा सामाजिक जीवन का सजीव चित्रण होता है। मेवात में लोकवार्ता या किस्सों को 'बात' कहते हैं। बात कहने का गद्यात्मक व पद्यात्मक दोनों रूप प्रचलित है।

मेवाती लोक जीवन में दो प्रकार से बात कहने की कला प्रचलित है। पहला वह प्रकार है, जिन्हें आम आदमी अलाव के चारों ओर बैठक हुक्के को गुड़गुड़ाते हुए कहते–सुनते हैं अथवा माँ, दादी, नानी बिस्तर में लेटकर अपने बच्चों को बात सुनाती हैं। दूसरा वह प्रकार है जिसमें पारम्परिक कलाकर मीरासी, भाट, जोगी अथवा नट मेवात समाज में होने वाली महफिलों, शादी–विवाह आदि उत्सवों पर अपनी ओजस्वी वाणी में सुनाते हैं। बात कहना इनकी आजीविका का साधन भी होता है। बात कहने वालों की शैली व अंदाज अभिनयपूर्ण होता है। बात कहने वाला कहानी के सभी पात्रों का अभिनय स्वयं करता है। श्रोता चलचित्र की तरह सभी घटनाओं को सामने घटता हुआ अनुभव करता है।

बात कहने–सुनने के लिए आमतौर पर दो पात्र होते हैं। वैसे कई मौकों पर एक आदमी भी बड़े खूबसूरत अंदाज में बात कहते हुए मिल जाएगा मगर जब एक बात कहने वाला और हुँकारा भरने वाला हो तो बात का मजा ही निराला होता है। एक ओर जहाँ बात कहने वाला अपने व्यक्तित्व शैली एवं अनुभव से बात को दिलचस्प एवं प्रभावी बनाता है, वहीं दूसरी ओर हुँकारा भरने वाला कहानी को गति और उत्साह प्रदान करता है। तभी तो कहा गया है – बात में हुंकारों, फौज में नगारों।

मेवाती लोक साहित्य व लोक जीवन में अच्छी व बुरी दोनों ही प्रकार की लोक वार्ताएं प्रचलित हैं। सदियों से हमारे समाज में अच्छे व बुरे, सभ्य–असभ्य, ईमानदार–भ्रष्ट, दयालु–निर्दयी तथा बहादुर–कायर पुरुष पैदा होते रहे हैं। मनुश्यों के अलावा पशु–पक्षी, भूत–प्रेत, राक्षस–दानव, जिन–परी आदि पर आधारित बातों का मेवाती लोक जीवन में अत्यधिक प्रचलन है।

मेवाती लोकजीवन में महाकवि सादल्ला विरचित 'पण्डून का कड़ा' की बात बहुत प्रसिद्ध है। माना जाता है लगभग 1780 ई. में पूरी हुई यह रचना महाकवि सादल्ला की अमर रचना है जो आज तक मेवातियों के दिलों में बसी हुई है। महाकवि के शब्दों में–

"सत्तरह सौ सत्तासियां, बरस गया हा बीत।
जाणे पण्डू काल हा, जिनकी जगत करे परतीत।।"[42]

'पण्डून का कड़ा' वास्तव में महाभारत पर आधारित मेवाती भाषा की रचना है। यह माना जाता है कि इसका अधिकांश भाग सादल्ला ने रचा व इसे पूरा नबी खां ने किया था।

'पण्डून का कड़ा' एक वीर रस प्रधान रचना है, जिसमें युद्ध के दृश्यों का बड़ा ही खूबसूरत वर्णन है। यथा–

"चले बाण कमाण, मेघ अम्बर पे छायो
ऐसा न है कोई, छुड़ावन उन कू भायो
वा परबत के बीच, लडां दो सिंह बिरह्मा का
जानो भिड़े पहाड़, टूक उड़ जाए गजा का
वे नर तो ऐसे भिडां, जैसे भिड़ा पहाड़
'सादल्ला' जानूं कदी वे ना बैठे हार।"[43]

कौरव–पांडवों को धूत क्रीड़ा की कुछ पंक्तियां इस प्रकार हैं–

"काईं के घीका बलें काई के घोर अंधेर
काई का भजन में , काई न दीनी भांजी गेर
कैरून के घी का बले, पंडून घोर अंधेर
पंडून का भजन में कैरू ने दीन्ही भांजी गेर।"[44]

पंडून का कड़ा मेवात में सीडी या कैसेट के रूप में भी उपलब्ध है जिसको गाँव के लोग टीवी या टेप रिकॉर्डर में देखते या सुनते हैं। पंडून का कड़ा को देखना वो पुण्य का काम मानते हैं। उपन्यास में नसीब खां कहता है– "याहे देखणा में कोई बुराई न है, बल्कि ई तो हमन्ने देखणों ही चहिए। बावणा, यामे तो हमारा पुरखान को बखान है।"[45]

मेवात में दूसरी प्रसिद्ध बात 'पांच पहाड़ की लड़ाई' है। मेवात के वर्तमान गाँव गढ़ (भरतपुर) की पहाड़ी के ऊपर एक छोटा सा किला है जो इतिहास में गढ़ अजान के नाम से प्रसिद्ध है। इसी गढ़ अजान पर शाहजहां के शासनकाल में रायभान नामक मेव सरदार का राज्य था। बादशाह अपना कुछ धन ऊटों के माध्यम से दिल्ली से आगरा भेज रहा था तभी रायभान व उसके कुछ सैनिकों ने ऊंटों को लूट लिया। शाहजहां की चेतावनी के बाद भी इन्होंने धन वापस नहीं लौटाया। अब आक्रमण के अलावा बादशाह के पास कोई चारा न था। फलस्वरूप मेवों व मुगल सेना के मध्य जबरदस्त संघर्ष हुआ। इसी संघर्ष की कथा है पांच पहाड़ की बात।

रायभान और उसके साथी किले में बैठे हैं कि उनका जासूस सूचना देता है –

"मसन्द, मवासी, रायभान रूडा तू सुन लेय।
ऊंट चला अकबराबाद कू, तम पे लिया जाए तो लेय।।"[46]

फिर रायभान के साथी ऊंटों को लूट लेते हैं। इसकी सूचना बादशाह के दरबार में पहुंचती है तो पूरी राजधानी में खलबली मच जाती है। बादशाह ऊंट वापिस करने को कहता है –

"दिल्ली को दरबार में, बहुत भरूंगा साख।
ऊंट रायभान फेर दे, भाई चारो राख।।"[47]

रायभान ऊंटों व धनों को लौटाने से मना कर देता है। इस प्रकार से मेव व मुगलसेना का युद्ध होता है।

भारतीय हिन्दी साहित्य में राधा–कृष्ण, मीरा–कृष्ण और रुक्मणी–कृष्ण आदि प्रेम कथाएं बहुत प्रसिद्ध हैं। इसी विषय पर मेवात में भी 'चन्द्रावल गूजरी की बात' काफी लोकप्रिय है। बालकृष्ण जमुना किनारे गाय चराने जाते हैं। नंद गाँव की गूजरियां दही बेचने जाती हैं तो कान्हा अपने ग्वाल साथियों के साथ उनकी मटकियां फोड़ देता है तथा उनकी दही छीनकर खा जाता है। गूजरियां यशोदा से शिकायत करती हैं मगर कान्हा फिर भी नहीं मानता है। इसी से कान्हा की हरकत सुनकर चन्द्रावल गूजरी कान्हा को सबक सिखाने की प्रतिज्ञा करती है।

चन्द्रावल अपनी सखियों के साथ सज–सँवरकर दही बेचने निकलती है। उसका सौंदर्य देखते ही बनता है–

"देखो चन्द्रावल को रूप, सखी सब पड़गी कायल।
झांझण–बिछुआ पहर, पांव की पहरी पायल।।
अगूंठा में आरसी, सिर पर ओढो दक्खिनी चीड़।
जैसी सीसी कांच की वाको ऐसो बणो सरीर।।"[48]

धीरे–धीरे चन्द्रावल गूजरी व कृष्ण में प्रेम हो जाता है, जिससे चन्द्रावल गूजरी के माता–पिता बहुत गुस्सा होते हैं और उसकी शिकायत कंस के पास कर देते हैं। फिर क्या था देवा व दानवों का युद्ध होता है तथा कृष्ण विजयी होकर चन्द्रावल से शादी करता है। कृष्ण

व चन्द्रावल गूजरी की रासलीला को मेवात में इस प्रकार गाया जाता हैं –

"किसन बदल गो रूप, देह कर लीनी भारी
देख किसन को रूप, हँसे मुख दे दे ताली
कदी कन्हैया जुआन, कदी हो जाय बारौ
कदी खिले है चन्द्र, कदी ऊ कान्हा कारो
नथ बेसर नर झटक, हाथ छतियन पे डारो
माथा की बिंदी हड़ी, गल को झटको हार
गूजरी लूटी श्याम ने, वाको फीको करो सिंगार
कोई उतारे मटकिया, काई ने झटकी चीर
अंगिया फाड़ी श्याम ने, कर दी छोटी–छोटी लीर।"[49]

'दरिया खां–शशिबदनी' की बात भी मेवात की प्रसिद्ध बात है। यह बात एक प्रसिद्ध प्रेम कहानी है। वर्तमान कांमा (भरतपुर) के निकट 'डाबक' में मेव सरदार टोडरमल की जागीर थी। टोडरमाल की रियासत 'पांच पहाड़' के नाम से प्रसिद्ध थी। टोडरमल के बगल की रियासत का नाम 'पोन्होश' था। इसके सरदार राव बाधा मीणा थे। ये दोनों दोस्त थे। एक इत्तेफाक के तहत राव टोडरमल के घर पुत्र व राव बाधा के घर पुत्री का जन्म होता है। दोनों दोस्त दोस्ती को बच्चों के जन्म के वक्त ही रिश्ते में बदल देने का निश्चय करते हैं।

वायदे के अनुसार बारात आती है, लेकिन किसी बात को लेकर कहा–सुनी हो जाती है और बारात वापस खाली हाथ लौट जाती है। इधर शशिबदनी व दरिया खां दोनों जवान हो जाते हैं। सावन के महीने में शशिबदनी अपनी सहेलियों के साथ झूला झूल रही होती है तभी किसी सहेली ने उसके प्रेम के बारे में चर्चा षुरू कर दी। फिर क्या था विरह की ज्वाला भड़कती है। शशिबदनी अपनी माँ से पूछती है –

"सब सातण मेरे सात की, सभी सासरे जाय।
कहा खता हमसू बणीं, माता जिक्र हमारो नाय।।"[50]

इस प्रकार शशिबदनी दरिया खां के पास संदेशा पहुंचाती है। दरिया खां आता है और लंबी लड़ाई के बाद दोनों का मिलन होता है।

उपरोक्त किस्सों के अलावा 'स्यापोश का किस्सा', 'संत लाल दास का किस्सा',

राजा भर्तृहरि का किस्सा', 'राजा मोरध्वज का किस्सा', 'पूर्ण भगत का भात भराई का किस्सा' एवं गादड़ा–गादड़ी का किस्सा भी मेवात के प्रसिद्ध किस्से हैं। मेवाती लोकवार्ता या बात में ज्यादातर बातें ऐतिहासिक हैं जिनका संबंध किसी न किसी इतिहास संबंधी चरित्र से रही है या फिर पौराणिक चरित्रों से। कुछ किस्से ठेठ मनोरंजन प्रधान हैं, जिनका प्रधान उद्देश्य मनोरंजन के साथ नैतिक शिक्षा देना रहा है। गादड़ा–गादड़ी का किस्सा ऐसा ही है। गादड़ी नदी में पानी पीते समय अपनी परछाईं को चंद्रमा द्वारा चूमते हुए देखती है। इसकी शिकायत वह अपने पति गादड़े से करती है। गादड़ा नदी पर आता है और चन्द्रमा को पकड़ने के लिए नदी में छलांग लगा देता है। इस प्रकार इस कहानी के माध्यम से लोक साहित्यकार का उद्देश्य है यह शिक्षा देना है कि कोई भी काम बिना सोचे–विचारे नहीं करना चाहिए। बिना सोचे–विचारे किए जाने वाले काम का अंत भी बुरा होता है।

मेवाती बातों के रचयिता अंजान शायर समय के गर्त में पता नहीं कहाँ खो गए लेकिन ये बातें कुछ लिखित रूप में मेवाती साहित्य में उपलब्ध हैं तो कुछ मौखिक रूप में वहाँ के लोगों में प्रचलित हैं जो परम्परा से चली आ रही हैं।

मेवाती दोहा परम्परा

मेवात की धरती ने जहाँ शूरवीरों को जन्म दिया है वहीं दूसरी ओर अनेक शायरो को भी। उन्होंने अपनी शायरी व दोहों से मेवात की धरती करे समृद्ध बनाया। मेवाती दोहा परम्परा जितनी विशाल है, उतनी ही प्राचीन भी। दोहे में बात कहना और दोहे में बात का उत्तर देना मेवात की आम परम्परा रही है। मेवाती दोहा– परम्परा में विविध भावों से ओत–प्रोत दोहे हैं, जिनमें वीर रस प्रधान, श्रृंगार रस प्रधान व नीति से संबंधित दोहों का विशाल भंडार है। कितने ही जाने–अनजाने कवियों ने इस परम्परा रूपी बेल को सींचा है। महाकवि सादल्ला के ज्ञान–ध्यान के दोहे मेवात में ज्यादा प्रचलित हैं। इन दोहों में अलौकिक सत्ता के प्रति आत्मा का मिलन, मृत्यु से संबंधित दार्शनिक व नीति से संबंधित दोहे प्रमुख हैं। महाकवि सादल्ला के ज्ञान ध्यान के प्रमुख दोहे निम्न हैं जो मेवात के लोगों की जबान पर हर वक्त चढ़े रहते हैं, जिन्हें उपन्यासकार ने भी अपने उपन्यास के पात्रों के माध्यम से जगह–जगह प्रयुक्त किए हैं।

1. 'पी आयो है लेण कू, कस लायो घोड़ी।
   साथन मेरा साथ की, आज बिछट चली जोड़ी।।'

2. 'पीहर सू पीउ कू, लेती जा सौगात।
कहा जुआब दूं पीउ कू मेरा खाली दोनूं हाथ।।'

3. 'ई देह तो काया नकल बिन्दूक है, कैसा पेचन सू जोड़ी।
नाल पड़ी रह जायगी, जब याकी निकलेगी गोली।।'

4. 'पिया आयो लेण कू धर बुगला को भेस।
नैना रोवे मन हँसे, चली पिया के देस।।'[51]

स्त्री की व्यथा–कथा, उसके साथ हो रहे पशु तुल्य व्यवहार व बेटे–बेटी के भेदभाव की अभिव्यक्ति देने वाले भी अनेक दोहे मेवात में प्रचलित हैं। यथा –

1. 'बाबल तेरा देस में एक बेटी, एक बैल।
हाथ पकड़ के दीनी जामे परदेसी के गैल।।'

2. 'भली करी करतार मरद की नार बनाई।
बणके हुई तैयार मरद की चरण चढ़ाई।।'

3. 'बेटा सू बेटी भली, जे कुलवंती होय।
बेटा उजाले एक कुल, बेटी उजाले दोय।।'[52]

मेवात समाज में ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण भारतीय समाज में पुत्र को पिता के वंश का संचालक माना जाता है। मेवात समाज में पुत्र की महत्ता से संबंधित दोहे भी प्रचलित हैं। जैसे–

रंडुआ को कहा माजनो, जमीं बिना कहा लोग।
पुत्र बिना कहा रोशनी, दूध बिना कहा भोग।।[53]

पुत्र में भी सुपुत्र एवं कुपुत्र दोनों के लक्षणों को बताता हुआ दोहा निम्न है –

एक पूत सपूत सू समनदर तिरे जहाज।
हो जाए एक कुपातर कोख में, सारा जाय कुटुम्ब की लाज।।

'तिरिया–चरित्र' संबंधी दोहे भी मेवात में बहुत प्रचलित हैं, जिनमें स्त्री चरित्र, स्त्री के व्यवहार, उसके द्वारा निषिद्ध कार्यो की चर्चा मिलती है।

1. 'लोग वाहे मत जाण, जाका घर में पंच लुगाई।
बेटी वाहे मत जाण, पीहर में जो घाले स्याहीं।।'

2. 'जो मूढा के बैठी रहे, आंखन कजरा डार।
कोक कहे सुन व्यास जी, ऐसी सिर कटवा दे नार।।'[54]

3. 'बत्तीसी छिरछिरी, बैल सी गैणी (छोटे कद वाली)।
कोक कहे सुन व्यास जी, तिरिया पड़ोसी लहणी।।'

4. 'पड़दो तो खोले नहीं, हँस–हँस करे बात।
कोक कहे सुन व्यास जी, तिरिया बहुतन करे तलास।।'[55]

स्त्री के बारे में नकारात्मक विचारों से हमारे धर्म–शास्त्र भी भरे पड़े हैं। कबीर, तुलसी की बहुत सी पंक्तियां स्त्री विरोधी हैं। इसी तरह मेवात में भी स्त्री के बारे में नकारात्मक दृष्टिकोण वाले अनेक दोहे व शायरी हैं जैसे–

1. 'काया, माया स्त्री और हरा रुख की छाह।
ये पलटे हैं पल में ये काहे की नाय।'[56]

2. 'चोरी कैद करावती, चुगली कर दे ख्वार।
घर लुटवा दे जामिनी, सिर कटवा दे नार।।'[57]

भारतीय समाज में काल की चक्रीय अवधारणा रही है। इसके अनुसार पहले 'सतयुग', फिर 'त्रेता युग फिर 'द्वापर युग' व सबसे अंत में 'कलयुग' आया। इनमें सबसे अच्छा सतयुग को माना जाता है, जिसमें सच्चाई का ही बोलबाला था। बाद के युगों में बुराइयां बढ़ती चली गई और कलयुग में बुराइयां अच्छाइयों पर विजय पाने लगीं। मेवात के दोहे व शायरी में इस कलयुग के बुरे व्यवहार के बारे में भी वर्णन मिलता है। जैसे–

1. 'उठ गई प्रीत–परीति, टूट गया नाता–रिस्ता
माया–मोह कित गया, पड़ा भाईन में भाता
मतलब को संसार है, मतलब को संसार
माया की सब दोस्ती, नहीं अच्छी ढूंढ़े नार
कलजुग आयो बुरो जमानों।'[58]

2. 'कलजुग ब्यापो खलक में, पाप हुओ भरपूर।
कर तिरिया सू दोस्ती, पुत्तर हुओ पिता सू दूर।।'[59]

3. 'देख ले कलजुग के रंग को, बिगाड़ा है ऐसे ढंग को
साध ने छोड़ा सतसंग को, चढ़न लगो बनिया अब जंग को
चौदहवीं सद्दी भुगत गई, जग में घणों पाप बियापो
कलजुग आयो बुरो जमानो।'[60]

मेवाती दोहा परम्परा बहुत समृद्ध रही है। यहाँ कुछ ऐसे दोहे भी लोक जीवन में प्रचलित हैं जिनमें गहरी अनुभवशीलता विद्यमान है। व्यावहारिक जीवन की यथार्थ स्थिति का सजीव चित्रण इन दोहों में द्रश्टव्य है। कुछ इसी प्रकार के दोहे निम्न हैं, जिन्हें मेवात के लोग अपने दैनिक बोल–चाल में प्रयोग करते सुने जा सकते हैं –

1. धौला–धौला सब भला, धौला भला न केस।
तिरिया दबे, न दुसमन हटे, अब तू नीची राख नरेस।।

2. धन बिन किसो धनेसरी, रुत बिन किसी बहार।
भाई बिन भारत किसो, पी बिन किसो सिंगार।।

3. चलणो है डटणो नहीं, चलणो पी के साथ।
गुजर होयगी सासरे, पीहर थोड़ा दिन को साथ।।

4. बिन माँ किसी टोकरी, बिन पी किसो सिंगार।
बिन भाई पीहर किसो, चाहे बस्ती बसे हजार।।

5. जाने आन–बान समझी नहीं, होए चाहे चौदह विद्या निदान
गयो बखत आवे नहीं, 'भीक जी' पच–पच फिरे जहान।।

6 चतर नार और बैल को गाहक सारो देस।
मांगण हार और पावणों, इनको आदर करो हमेश।।

7. धण लुटगो लुट जाण दे, धन की होगी गार।
मिन्तर तो परखो गयो, धन हो जाए सौ बार।।

8. पाप करा तीनूं गया, धरम, करम और बंस।
तीनूं टीला देख ले, रावण, कैरू, कंस।।

9. कुंआ कांकर मत डिगे, मत बासन डिगे अमाय।
मत गोरी को पिय मरे, मत बालक की माय।।

10. आजा मिन्तर बैठ जा, खेलेंगा बाजी।
लेण–देण को कुछ नहीं, तेरी सूरत सू राजी।।

11. लकड़ी को हथ्यार, न पत्थर काटे आरी।
कैसे उतरे पार हंस कागन की यारी।।

12. जिनका बुजरग मर गया, रिगड़–रिगड़ के टांग।
उनकी भी दहेज में अब मारूति की मांग।

इस प्रकार मेवाती दोहा व शायरी परम्परा बहुत पुरानी और समृद्ध रही है। महाकवि सादल्ला के ज्ञान–ध्यान के दोहे, नसीब खां की होली, मीर खां एवं एवज के उपदेश परक दोहे, व्यास जी के नीति परक दोहे, कोक जी का तिरिया चरित्र वर्णन न केवल मेवाती लोक साहित्य की अपितु भारतीय साहित्य की अमूल्य निधि है। इसीलिए लार्ड सन्नू खां मेवाती ने मेवाती दोहों के बारे में लिखा है –

'मेवाती साहित्य में दूहो छंद है मुक्ख।
गाते, सुनाते, बोलते, देवे भारी सुक्ख।।'[61]

आवश्यकता है तो इस बात की कि इन्हें साथ प्रकाशित कराकर इन्हें सामान्य पाठकों की दृष्टि में लाया जाए। पूर्व में तो मेवाती दोहा परम्परा इतनी समृद्धि रही कि मेवाती अपना परिचय भी दोहों के माध्यमों से ही देते थे–

'धरती थेपी हमन ने, हम धरती का देव।
सुणियो मिंतर बावला, अब जात हमारी मेव।।'[62]

मेवाती पहेलियाँ

पहेलियाँ ज्ञानवर्धन का मनोरंजक साधन है। बच्चों से लेकर बूढे तक पहेलियों से दिमागी कसरत करना पसंद करते हैं। मेवात में पहेलियों को 'बताणी बात' या 'फाली–आडणा' कहते हैं।

मेवात में पहेलियों की दो परम्परा रही। एक पुरानी परम्परा जिसमें मेवात के सादा व ग्रामीण जीवन का चित्रण है और दूसरी आधुनिक मेवाती साहित्यकारों द्वारा रचित पहेलियाँ हैं जो मेवात के ग्रामीण व सादा जीवन से ऊपर उठकर राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर विचरण करती हुई नजर आती है। जैसे–

1. 'सारो जग सुमरण करे, जाको आद न अंत।
गुण–गुण के हारा गुणी, सूफी, संत, महंत।।'

(खुदा, ईश्वर, गॉड)

2. 'एक मुलक का दो हुआ, दो का होगा तीन।
तीनूंई दुख पा रहा, ऐसी बंटी जमीन।।'

(भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश)

3. 'डर दुश्मन को देख के, खींच दई दीवार।
लाख लगा ले जोर पर दुश्मन होय न पार।।'

(चीन की दीवार)

4. 'एक देश नू लगे, ज्यूं नाव पड़ी दरियाव।
मंगा–भीत अर माव रो, कंगारू हूं पांव।।'[63]

(आस्ट्रेलिया)

उपरोक्त पहेलियों के अलावा मेवात में ऐसी पहेलियां भी बहुतायत मात्रा में हैं, जिनका विषय मेवाती ग्रामीण जीवन के आसपास ही घूमता नजर आता है। ये पहेलियां अपने दिलचस्प शैली और विशुद्ध मेवाती शब्दों से सुसज्जित होती हुई अपना अलग ही स्थान रखती हैं। जैसे –

1. 'इतलू पाहड़–इतलू पाहड़ बीच में खिजूर।
राजा–राणी चढ़के पूंछा, जयपुर कितनी दूर।।'

(तराजू)

2. 'एक नार अजब हुड़दंगी, आधी टांग राखे नंगी।
जो करे धोबन को काम, है वही या नारी का काम।।'

(धोती)

3. 'अत्ताल बाको घूसला, पत्ताण बाको अंडा।
बता तो बता नहीं मारुंगी डंडा।'

(महुआ)

4. 'लक्कड़ ये लक्कड़ खड़ो, लक्कड़ लगावे दण्ड।
के तो मेरी बात बता नहीं, भर दे मेरो दण्ड।।'

(ढेकली)

5. 'बड़ रे बड़ तेरी पाणी में जड़।
टुगली में आग लगी, लोगन की लर।'

(हुक्का)

6. 'चार खूंट की चौतरी, पच्चीस हात की डोर।
खींचण लागो बालका, नाचण लागो मोर।।'

(पतंग)

7. 'ऊपर लू तो मूल है, नीचे लू डाली।
या कोउ भेद बताय दे, रोटी जब खायो हाली।।'

(ततैया का छत्ता)

8. 'एक बलेंडो सहस घर न्याला–न्याला द्वार।
याको अर्थ लगा जा, पाणी जब भर लायो नार।'

(मधुमक्खी का छत्ता)

9. 'अली–गली में रस, केतो मेरी बात बता, नहीं रुपया दे दे दस।'

(जलेबी)

10. 'आठ अठंगड़, बारा बंगड़, चार चटख, दो तौरू।'[64]

(थण)

मेवाती कहावतें एवं मुहावरे

मेवाती भाषा में कहावतों व मुहावरों का खूबसूरत समावेश पाया जाता है। वास्तव में मेवाती भाषा लोकोक्ति व मुहावरे प्रधान भाषा है, जिसमें हास्य का पुट भी पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है। मेवात के लोग अपने दैनिक उपयोग में मुहावरों का प्रयोग बहुतायत से करते हैं। बहुत सी मेवाती कहावतें अपने शुद्ध रूप से हिन्दी भाषा में प्रयोग होती है मगर कुछ कहावतें ऐसी हैं जो सिर्फ मेवात में ही प्रयोग होती है। प्राचीन आर्यन –क्षत्रिय कहलाने वाले मेव अपनी परम्पराओं व रीति–रिवाजों पर काफी गर्व करते हैं। यही कारण है कि मेवात की अनेक कहावतें मेवों की वीरता की प्रतीक बन गई हैं।

विदेशी आक्रमणकारियों से लगातार टक्कर लेने वाले ये मेव अपनी भूमि को वीर भूमि कहते हैं। इसीलिए वे अपने अतिथि का सत्कार भी 'ई है मेवात' पहले घूंसों पीछे बात' कहकर करते हैं।

मेवात के लोग शक्ति की इज्जत करते हैं इसलिए 'जाकी लाठी, वाकी पाटी' पर इनका अटल विश्वास है। वैसे भी मेवों के बारे में मशहूर है "मेव मरो जब जाणियो, जब तीजो हो जाय।"[65]

मेवात के लोग अपने स्वाभाव से शांतिप्रिय होते हैं इसलिए वे 'उलझणा से सुलझणो' ही बेहतर मानते हैं, परन्तु यदि मेवात के लोगों के साथ धोखा होता है तो फिर वह देवताओं की भी नहीं सुनता है और कह देता है कि 'तू देव तो मैं मेव'।

मेवों की वीरता को प्रस्तुत करने वाली कहावतों के अलावा ऐसी भी लोक कहावतें हैं जो सुन्दर तो हैं हीं साथ ही जिनका अर्थ भी काफी गंभीर एवं उपदेशात्मक है। कुछ ऐसी ही मेवाती लोक कहावतों के उदाहरण निम्न हैं–

1. ब्या पीछे बढ़ार–मौत के बाद डॉक्टर आना।
2. बहु भागण हार, बलैण्डे सांप बतावै– बहाना बनाना।
3. तीन पा चून, चौबारे रसोई– थोड़ी चीज पर घमंड करना।
4. थाणा की गधी– दूसरे के सहारे पर घमंड करना।
5. भाई भावको, दुश्मन द्राव को– भाई जो वक्त पर काम आए, ,शत्रु जब दावं पे आ जाए

6. अपणो मारे छाँ मे गेरे– भाई, विभेद के बावजूद समय पर काम आता है।
7. गोत न मिलना– आपसी समझ न होना।
8. पुआ न पापड़ी, गद्द बहू आ पड़ी– आसानी से काम हो जाना।
9. मरे पीछे वैद्य धणा, बिके पीछे गाहक धणा– समय के बाद मोल करना।
10. नंग बड़ो परमेसर सू– बेशर्म से सामना मुश्किल।
11. कागज सू काली कायली– बेइज्जती से बड़ा कोई दंड नहीं।
12. पखेरुओं में कौआ आदमियों में नौआ– पक्षियों में कौआ व मनुष्यों में नाई सबसे चालाक होते हैं।
13. मोठ मन ही मन इतरा रही है, ई न पतो के बाजार में भाव कहा है– अपनी बड़ाई स्वयं करना।
14. एक बंदरी को रुसना सू, कौन सो विन्दावन खाली हो जायगो– अकेले आदमी का कोई मोल नहीं।
15. न बुनाई देन कू तो घटो बतायो सूत– बुराई छिपाने के लिए दूसरों पर ही आरोप लगाना।
16. कुल्हिया में गुड़ फोड़ना– चुपचाप काम करना।

मेवात समाज में कुछ ऐसी भी कहावतें प्रचलित हैं जो मेवात में ही सुनने को मिलती हैं। वे वहाँ की धरोहर मानी जाती हैं। इन कहावतों को कहने वाला स्वयं ही प्रश्नकर्ता करता हुआ उत्तर देता है। उचित अवसर व सही अंदाज में कही जाने पर ये कहावतें बातचीत में जान डाल देती हैं। ऐसी ही कुछ कहावतों के उदाहरण निम्न हैं –

1. 'नाई–नाई बाल कहाँ'?
   जिजमान सांमेइ आ जांग्गा। (प्रत्यक्ष को प्रमाण की जरूरत नहीं है)
2. 'पहलवान अंटी लगा।
   अंटी तो जब लगाऊं, धींगड़ा तलवान ने ई न टिकण देय।' (असमर्थ होना)
3. 'तू कौण'?
   मैं खामां खा। (किसी के बीच में अनावश्यक हस्तक्षेप करना)
4. 'सुस्सा–सुस्सा (खरगोश) काई सू जीवा।'
   अपणी गोडलीन (पांवों) सू। (अपनी शक्ति पर विश्वास होना)

5. 'भूत–भूत तेरा पांमन्ने बांधुग्गो।'
   मेरा पामनने तो जब बाधियो, पहले अपना कुनबा का पामनने तो बांध। (पर उपदेश)

6. 'ननवा तेरी मां ने खमस करो।'
   'बुरो करो'
   'वा ने तो करके बी छोड़ दियो,
   और भी बुरो करो।'[66] (गलती पर गलती करना)

लोक कहावतों की तरह मेवात के निवासी बात–बात में मुहावरों का प्रयोग भी करते हैं। ये मुहावरे विशुद्ध मेवाती शब्दों में होते हैं। इनमें हास्य का पुट भी काफी मात्रा में विद्यमान रहता है। मेवात में प्रचलित कुछ चर्चित मुहावरों के उदाहरण निम्न हैं–

1. 'दिन में तारा दीखणा– भयभीत होना।
2. ऊपर कू थूकना– घमंड करना।
3. बड़ तले की बात– गुप्त बात।
4. भैंस बिवाणा– विलम्बन करना।
5. छान तोड़ना– हानि पहुंचाना।
6. सींग न समाणा– आपसी झगड़ा।
7. रैं–रैं, खैं–खैं–व्यर्थ में झगड़ना।'[67]

मेवाती लोकजीवन की भाषा

मेवात क्षेत्र की भाषा को उस क्षेत्र के नाम के आधार पर ही 'मेवाती' नाम दिया गया है। मेवाती यहाँ की मातृ भाषा है। मेवाती भाषा मूलतः तो मेवात क्षेत्र की ही भाषा है, परन्तु इसका क्षेत्र काफी विस्तृत है। मेवात तो इसका केवल एक भाग है। अलवर, भरतपुर, गुड़गांव जिलों में यह भाषा मेवाती रूप में जानी जाती है तो दिल्ली के दक्षिण तथा पश्चिम में 'अहीरवाटी' के रूप में।

जार्ज ग्रियर्सन ने मेवाती भाषा क्षेत्र की सीमाएं रेवाड़ी से अलवर के छह मील पश्चिम तक, बाना नदी के दक्षिण तक तथा भरतपुर क्षेत्र में डीग तक मानी है। मेवाती में पूर्व में वे ब्रज भाषा, दक्षिण में जयपुरी की डांग शाखा, उत्तर में गुड़गांव, पश्चिमी गुड़गांव की अहीरवाटी को मानते हैं।

डॉ. हरदेव बाहरी के अनुसार " शुद्ध मेवाती अलवर, भरतपुर के उत्तर–पश्चिम तथा गुड़गांव के दक्षिण–पूर्व में बोली जाती है। इसकी एक सीमावर्ती उप बोली अहीरवाटी है, जिस पर हरियाणवीं का प्रभाव अधिक है।"[68]

इस प्रकार यदि हम मेवाती भाषा के स्वरूप और क्षेत्र को समझना चाहें तो कह सकते हैं कि मेवाती भाषा अपनी सीमावर्ती उपबोलियों से प्रभावित होकर एक मिश्रित भाषा है, जिसमें राजस्थानी की अहीरवाटी, ब्रज भाषा व हरियाणवी का मिश्रण है। यही मिश्रण मेवात क्षेत्र की भाषा मेवाती को जन्म देता है। मेवाती भाषा पूरे मेवात अंचल में बोली व समझी जाती है, जिसका क्षेत्र पहले अध्याय में दिया गया है।

मेवाती भाषा पर चूंकि हरियाणवी, ब्रजी, व राजस्थानी (अहिरवाट) का प्रभाव है, इसलिए इसमें एक खरखरापन व मिठास दोनों विद्यमान हैं। ब्रज क्षेत्र के आसपास के मेवात में ज्यादा मिठास है तो हरियाणा क्षेत्र आसपास वाले मेवात में खरखरापन अधिक है। मेवाती भाषा लोकोक्ति व मुहावरों से सराबोर होकर रसमय हो गई है। मेवाती भाषा का एक उदाहरण निम्न है –

"सबसू बढ़िया बात तो ई है चांदमल के सारा दिन काम करो अपणा खेतन में और तनखा मारो मुफत में सिरकार की। अब त दूर ही कांई लू जाए, देखे तो है रोज सालिगराम सन्नार्थी का छोरा ए। कैसे मास्टरी में मौज लेरो है। जाए है मदरसा की कहके और गप्प लड़ावे है सारे दिन चाय का खोखान पे। छठे चौमासे जब जी में आवे है, मार आवे है एकाध चक्कर।"[69]

लोकजीवन में गालियों की भरमार होती है। आपसी बोलचाल में गालियों का प्रयोग बुरा नहीं माना जाता। मेवात समाज में भी बात–बात में गालियों का प्रयोग व लड़ाई–झगड़ों में भद्दी से भद्दी गालियों का प्रयोग भी अपनी ठेठ मेवाती भाषा में दी जाती है। ऐसा ही एक उदाहरण, जिसमें गालियों के साथ–साथ मेवाती लोकोक्ति का भी बड़े सहज ढंग से प्रयोग हुआ है– "हम्बै पतो है जैसी बामणी है। चूतड़ धोए तो सूगली, चोद ए दस–दस दिन हो जावे हैं और कह री है बामण कहा बेचे हैं हमारे आगे। निगोड़ी ई तो ऊ बात होगी कि मोठ म नही मन इतरा री है, ईना पतो कि बाजार में भाव कहा है।"[70]

इस प्रकार किसी भी लोक की तरह मेवाती लोकजीवन की भी अपनी एक अलग पहचान है। वहाँ का संश्लिष्ट व सुसंगठित समाज, वहाँ की सामाजिक–धार्मिक मान्यताएं, लोक वार्ताएं, लोकगीत, पहेलियां आदि उसको एक विशिष्ट अर्थ प्रदान करते हैं।

संदर्भ सूची

1. लोक साहित्य की भूमिका : डॉ. कृष्ण उपध्याय, साहित्य भवन प्रा. लि. इलाहाबाद–3, द्वितीय संस्करण–1970, पृष्ठ–10
2. वही, पृष्ठ–10
3. वही, पृष्ठ–11
4. श्री रामचरित मानस : तुलसीदास, गीता प्रेस, गोरखपुर, संस्करण–2003, पृष्ठ–10
5. लोक साहित्य की भूमिका : डॉ. कृष्ण देव उपध्याय, पृष्ठ–12
6. वही, पृष्ठ–12
7. प्रोग्रेस ऑफ रोमांस : क्लेरारीवा, पृष्ठ–102
8. उपन्यास और जन समुदाय : रैल्फ फोक्स, परिकल्पना प्रकाशन, लखनऊ–20, पृष्ठ–54
9. वही, पृष्ठ–75
10. हिन्दी आलोचना : विश्वनाथ त्रिपाठी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली–02, पृष्ठ–150
11. बाबल तेरा देस में : भगवान दास मोरवाल, पृष्ठ–3
12. वही, पृष्ठ–72–73
13. वही, पृष्ठ–175
14. वही, पृष्ठ–171
15. वही, पृष्ठ–81
16. वही, पृष्ठ–250
17. (संपादक) शैलेंद्र सागर : कथाक्रम, लखनऊ, जनवरी–मार्च, 2005, पृष्ठ–46
18. बाबल तेरा देस में : भगवान दास मोरवाल, पृष्ठ–265
19. वही, पृष्ठ–249
20. वही, पृष्ठ–201

21. बाबल तेरा देस में : भगवान दास मोरवाल, पृष्ठ–201

22. वही, पृष्ठ–45

23. वही, पृष्ठ–105

24. वही, पृष्ठ–232

25. वही, पृष्ठ–78

26. लोक संस्कृति : आयाम और परिप्रेक्ष्य, (संपादक) महावीर अग्रवाल श्री प्रकाशन, एच 24 / 7 सिविल लाइन, करारी डीह, दुर्ग मध्य प्रदेश–01, भूमिका से

27. काला पहाड़ : भगवान दास मोरवाल, पृष्ठ–112

28. वही, पृष्ठ–120

29. मेवाती संस्कृति– अध्ययन एवं अवलोकन : सिद्दीक अहमद मेव, प्रकाशन दोहा तालीम, गुड़गांव, हरियाणा, संस्करण–1997, पृष्ठ–144

30. काला पहाड़ : भगवान दास मोरवाल, पृष्ठ–124

31. वही, पृष्ठ–124

32. वही, पृष्ठ–128

33. बाबल तेरा देस में : भगवान दास मोरवाल, पृष्ठ–214

34. वही, पृष्ठ–164

35. वही, पृष्ठ–275

36. मेवाती संस्कृति– अध्ययन एवं अवलोकन : सिद्दीक अहमद मेव, पृष्ठ–128

37. वही, पृष्ठ–134

38. वही, पृष्ठ–134

39. बाबल तेरा देस में : भगवान दास मोरवाल, पृष्ठ–275

40. काला पहाड़ : भगवान दास मोरवाल, पृष्ठ–58–59

41. मेवाती संस्कृति– अध्ययन एवं अवलोकन : सिद्दीक अहमद मेव, पृष्ठ–155–56

42. वही, पृष्ठ–89

43. वही, पृष्ठ–91

44. बाबल तेरा देस में : भगवान दास मोरवाल, पृष्ठ–189

45. वही, पृष्ठ–189

46. मेवाती संस्कृति– अध्ययन एवं अवलोकन : सिद्दीक अहमद मेव, पृष्ठ–91

47. वही, पृष्ठ–92

48. वही, पृष्ठ–96

49. बाबल तेरा देस में : भगवान दास मोरवाल, पृष्ठ–274

50. मेवाती काव्य (दूहे एवं लोकगीत) : सं. अनिल जोशी, मेवाती साहित्य प्रचार संस्थान, अलवर, प्रथम संस्करण–1996, पृष्ठ–57

51. बाबल तेरा देस में : भगवान दास मोरवाल, पृष्ठ–272

52. वही, पृष्ठ–294

53. वही, पृष्ठ–41

54. वही, पृष्ठ–327

55. वही, पृष्ठ–368

56. वही, पृष्ठ–449

57. वही, पृष्ठ–22

58. वही, पृष्ठ–177

59. वही, पृष्ठ–286

60. वही, पृष्ठ–464

61. मेवाती संस्कृति– अध्ययन एवं अवलोकन : सिद्दीक अहमद मेव, पृष्ठ–115

62. मेवाती संस्कृति – अध्ययन एवं अवलोकन : सिद्दीक अहमद मेव, पृष्ठ–115

63. वही, पृष्ठ–112

64. वही, पृष्ठ–114

65. वही, पृष्ठ–106

66. वही, पृष्ठ–109

67. वही, पृष्ठ–110

68. वही, पृष्ठ–40

69. बाबल तेरा देस में : भगवान दास मोरवाल, पृष्ठ–302

70. वही, पृष्ठ–50

अध्याय तीन

मेवाती जीवन की समस्याओं के परिप्रेक्ष्य में 'बाबल तेरा देस में' का मूल्यांकन

(i) सामाजिक बुराइयाँ और 'बाबल तेरा देस में'
   (अ) जातिप्रथा (छुआछूत)
   (ब) बाल–विवाह एवं दहेज प्रथा
   (द) जनसंख्या वृद्धि
   (य) आधारभूत सुविधाओं का अभाव (शिक्षा, चिकित्सा, यातायात, पेयजल)

(ii) नारी समस्या और 'बाबल तेरा देस में'

(iii) मेवात में सामासिक संस्कृति की टूटती कड़ियाँ और 'बाबल तेरा देस में'

(iv) मेव समुदाय और उनकी अस्मिता का प्रश्न

उपन्यास में चित्रित लोक तभी पूर्ण व सजीव हो पाता है जब वह अपनी सम्पूर्ण अच्छाईयों व बुराइयों के साथ उसमें अवतरित हो। लोक जीवन में अच्छाइयों के साथ–साथ बुराइयों की भी भरमार होती है। फणीश्वरनाथ रेणु ने इसीलिए अपने उपन्यास 'मैला आँचल' में समान रूप से 'फूल व शूल' होने का उल्लेख किया है।

'बाबल तेरा देस में' में मेवाती लोक जीवन अपने पूर्ण रूप से उभरा है। सामासिक संस्कृति व सुघटित समाज जिस मेवाती समाज की विशेषता रही है वह किस तरह से धीरे–धीरे टूटता जा रहा है। वहाँ के लोग किस तरह से धीरे–धीरे साम्प्रदायिक हो रहे हैं। वहाँ का पिछड़ापन, अज्ञानता, गरीबी, नारी समस्या आदि मुखर रूप से उपन्यास में चित्रित होती है। उपन्यासकार अपने उपन्यास में मेवात समाज का गतिशील चित्र प्रस्तुत करता है। समय के साथ कुछ समस्याएं धीरे–धीरे गम्भीर रूप धारण करती जा रही हैं तो कुछ समस्याएं समय के साथ कम होती जा रही हैं।

प्रारम्भ से ही मेवात समाज एक बन्द समाज रहा है। देश की राजधानी के इतना नज़दीक होने के कारण भी वह अभी तक राजधानी की चकाचौंध की चपेट में नही आ सका है। राजधानी से बनने वाले सामाजिक सुधार के विभिन्न कानूनों की आहट भी वहां तक नहीं पहुँचती हैं। वहाँ के लोग तो अपनी ही धुन व अपने ही कानूनों (मेव कस्टमरी लॉ) में जिए जा रहे हैं। वहाँ आज भी में आधुनिकता के निशान ढूँढना मुश्किल होगा। बाबल तेरा देस में के संदर्भ में मेवाती जीवन की समस्याओं का विवेचन हम निम्न रूप से कर सकते हैं।

(i) सामाजिक बुराइयाँ और 'बाबल तेरा देस में'

(अ) जातिप्रथा (छुआछूत)

भारतीय समाज में प्राचीन काल में चतुर्वर्ण की परम्परा प्रचलित थी जिसमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र चार वर्ण थे तथा प्रत्येक का वर्ण के आधार पर कार्य बँटा हुआ था। आधुनिक समाज में वर्णों का स्थान जातियों ने ले लिया तथा एक जाति दूसरी जाति को छूना भी पाप समझने लगी यहां तक कि निम्नवर्ण जाति के मनुष्य का दर्शन करना भी

पाप समझा जाने लगा, जिसे जातिप्रथा या अस्पृश्यता कहा गया। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 17 के अनुसार अस्पृश्यता का अन्त कर दिया गया। जिसके अनुसार "अस्पृश्यता से उपजी किसी निर्योग्यता को लागू करना अपराध होगा जो विधि के अनुसार दण्डनीय होगा।"[1] इस अधिनियम के विषय को 1976 में और बढ़ा दिया तथा "अस्पृश्यता के आधार पर अपमान आदि करने को भी दण्डनीय माना गया।"[2] बावजूद इन सबके अभी भी मेवात समाज में छुआछूत जिन्दा है।

मेवात समाज चाहे बाहर से कितना ही घुला मिला व सुगठित–संश्लिष्ट दिखाई देता हो लेकिन वहां अन्दर से आज भी छुआछूत अपने चरम पर विद्यमान है। मेवात समाज की हिन्दू जातियों में तो छुआछूत है ही, साथ ही मेवजाति में भी छुआछूत विद्यमान है। मेवात की हिन्दू जातियाँ अपने आपको मेव जाति से उच्च ही समझती हैं। इसी के कारण मेव जाति हिन्दू जातियों के शादी–विवाह समारोह पर हिन्दूओं के लिए खाने–पीने की अलग से व्यवस्था होती है। 'काला पहाड़' में भूरे खां अपने बेटे सलेमी के विवाह में कन्हैया ब्राह्मण को आमंत्रित करते हुए कहता है "कन्हैया, मैं सब समझ रो हूँ तू जहाँ बोल रो है ... फिकर मत कर मैंने पहले ही तम जैसान् कू सूखा चावल, घी, बूरा और तीन–चार कोरा मटका अलग धरवा दिया है... साथ ही में तिहारी एक अलग भट्टी खुदवा दूँगा... तिहारो जैसे जी करे, अपणी मरजी सू कादम रख लीजो... बस, राँदो और खाओ... कन्हैया तू कहा समझ रो है मैं कोई उतेक बावलो हूँ।"[3]

मेवात में छूआछूत का आलम यह है कि पानी भरने के लिए कुएँ एवं हैंडपम्प भी वहाँ जाति के हिसाब से बँटे रहते हैं। इतना ही नहीं बल्कि गांव के मोहल्ले के नाम भी जाति के ही हिसाब से होते हैं जैसे चिमरवाड़ा मोहल्ला, ब्राह्मण मोहल्ला, मेव मोहल्ला आदि। संतो (चमार) की बहू जब कुएँ पर पानी भरने के लिए अपना मटका पारो के मटके के पास रख देती है तो पारो उससे लड़ाई करती हुई कहती है "अरी ओ सन्तो की बहू तेरी कैसे मति मारी जारी है। रंडी, एक तो तम हमार कुआन् पे मुं उठाके चली आओ हो ऊपर से जूती–चप्पल समेत और चढ़ आओ हो... ई कोई तिहारो सहूर है।"[4] वहां निम्न जातियों का एक दूसरे के चौके–चूल्हे पर जाना भी निषिद्ध है। पारों के द्वारा बत्तो के चौक में जाने पर बत्तो इसलिए नाराज होती है कि वह मेवणी होते हुए उसके चौक में कैसे आ गई।

मेवात में विद्यमान छूआछूत की समस्या के प्रति पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियां अधिक सतर्क हैं। वे इस बात का विशेष ध्यान रखती है कि किसकी क्या जाति है और उसके हाथ का खाना चाहिए या नहीं ? पारो हालांकि फत्तू के साथ आने से पहले ब्राह्मण परिवार से सम्बन्ध रखती थी लेकिन फत्तू चूंकि मेव है इसलिए वह भी मेवणी हो जाती है। पारो के 'मेवणी' हो जाने पर भी उच्चवर्गीय संस्कार नहीं जाते हैं और वह अपनी बेटी नसरीन की पिटाई इसलिए करती है कि उसने जमाना (चमारी) के घर बनने वाले पुओं से अपने आपको 'सरभंग' बना लिया था।

धार्मिक विश्वास में जाति किस तरह से काम करती है, उपन्यासकार ने इस तथ्य को भी गहराई से पकड़ा है। जब तक किसी देवी–देवता की जाति का नहीं पता है तब तक उसके प्रति अगाध श्रद्धा होती है। लेकिन जैसे ही उसकी जाति का पता चलता है (और संयोगवश वह निम्न जाति का हुआ) तो सारी श्रद्धा चकनाचूर हो जाती है, इसका जीवन्त उदाहरण है सोनदेई। सोनदेई ब्राह्मणी है जो सन्त लालदास के मेले में अगाध श्रद्धा व विश्वास से जाती है, लेकिन जैसे ही उसको यह पता चलता है कि सन्त लालदास मेव था तो वह बिना प्रसाद लिये ही लौट आती है। इतना ही नहीं बल्कि "उसने मन ही मन बत्तो को खूब कोसा कि वैसे तो यह बत्तो इन्हें अपने चूल्हे चौके से गजभर दूर रखती है और कहाँ आज इन्हीं के हाथों से प्रसाद ले रही है।"[5]

मेवात में मेव जाति के अन्दर भी जातिवाद विद्यमान है। मेवों के यहाँ विभिन्न प्रकार के काम बंटे हुए हैं जैसे नाई, कसाई, खेतीहर, मौलवी–दरवेश आदि। ये लोग काम के आधार पर एक–दूसरे को उच्च व निम्न समझते हैं।

(ब) अन्धविश्वास –

मेवात में अन्धविश्वास आज भी अपनी चरम सीमा पर विद्यमान है। सन्तान प्राप्ति के लिए झाड़–फूंक, गण्डे–ताबीज में विश्वास करना वहां आम बात है। नक्कस लेना, पीरों–फकीरों–दरवेशों से 'सैनक' लगवाना, वहाँ आज भी विद्यमान है। 'कनफेड़' 'पीलिया','गठिया' आदि बिमारियों के लिए झाड़ लगवाना वहां आज के 'उत्तर आधुनिक' (?) युग में भी विद्यमान है।

उपन्यास के अधिकांश स्त्री पात्र संतान प्राप्ति के लिए व जिनके संतान के नाम पर केवल पुत्रियां है वे पुत्र प्राप्ति के लिए पीरों–फकीरों के चक्कर लगाती हैं और उनसे नक्कस लेती हैं। उपन्यास की पात्र सोनदेई कल्लन दरवेश के पास इसलिए जाती है कि उसके कोई संतान नहीं है। कल्लन दरवेश की सारी असलियत को जानते हुए भी बत्तो उसके पास इसलिए जाती है कि उसके पुत्र नहीं हो रहा है।

मेवात समाज में अन्धविश्वास पुरुषों की बनिस्पत स्त्रियों में अधिक देखने को मिलता है। जो स्त्रियां पढ़ी–लिखी होने के कारण इन पीर–फकीरों के ढोंग से परिचित हैं उनको भी समाज के या परिवार के दबाव से गण्डे–ताबीज या नक्कस लेने पड़ते हैं। शकीला अभी अपनी मर्जी से संतान नहीं चाहती है, लेकिन परिवार की महिला उसे जबरदस्ती दरवेश के पास नक्कस दिलाने के लिए ले जाती है क्योंकि उनको शक है कि शकीला के सन्तान नहीं हो रही है।

छोटी से लेकर बड़ी बिमारी के लिए वे डॉक्टर की बजाय किसी ओझा की तलाश करते हैं। सोनदेई की दोहित्रि के कनफेड़ होने पर वह उसको हीरा कुम्हार के पास थापी से झाड़ लगवाने ले जाती है। मेवात में मान्यता है कि कुम्हार की थापी से सात बार झाड़ा लगवाने से 'कनफेड़' ठीक हो जाती है। इसी तरह पीलिया, टी.बी.,गठिया आदि बिमारियों के लिए भी लोग डॉक्टर की बजाय किसी पीर–फकीर से झाड़ा लगवाना व उससे ताबीज लेना पसन्द करते हैं।

भूत–प्रेतों व 'औपरी–पराई' हवा से बचने के लिए वहाँ टोटके आज भी जीवित हैं। शनिवार जैसे वार को गांव के चौराहे आदि जगहों पर लोग अर्द्धरात्रि के समय टोटके करते हैं।

(स) बाल विवाह एवं दहेज प्रथा

बालविवाह एवं दहेज प्रथा जैसी समस्याएँ केवल मेवात समाज में ही नहीं है बल्कि ये समस्याएँ पूरे भारतीय समाज में विद्यमान हैं मेवात में ये दोनो समस्या कुछ अधिक हैं। वहाँ अधिकतर शादियाँ नाबालिग ही होती है। 'बाबल तेरा देस में' के जितने भी पात्र हैं उन सब की शादी बाल्यावस्था में ही हो जाती है। मैना, मुबारक, हसीना, जरीना, दीनमुहम्मद, जुम्मी आदि इसके उदाहरण हैं। मुबारक अली की बचपन में होने वाली शादी के विरोध में शकीला आवाज उठाती हुई कहती है, "वैसे भी अभी इसकी उम्र पढ़ने लिखने

की है। इसलिए इतनी जल्दी क्या है, इसके निकाह की ? अगर पढ़ाई पूरी करने के बाद इसे कहीं मुलाज़िमत मिल जाती है तो रिश्तों की कतार लग जायेगी।"[6] परन्तु शकीला की बात कोई नहीं सुनता क्योंकि वह स्त्री है और पुरुष प्रधान समसज में स्त्री की कौन सुनता है। युनुस जैसा पढ़ा लिखा युवक भी मुबारक अली के बाल विवाह का समर्थन करता है और कहता है, "बूढ़ी माँ, या हवेली का मालिक हम हैं या ई है ! मैंने भी तो निकाह पीछे ही करी अपनी सारी पढ़ाई।"[7]

बाल विवाह से ही पैदा होती हे दूसरी समस्या – अनमेल विवाह की। कभी–कभी यह भी देखने में आता है कि लड़के की बजाय लड़की की उम्र ज्यादा होती हे और उन दोनों की शादी कर दी जाती है। जुम्मी की शादी इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। जुम्मी के विवाह के समय वली मुहम्मद की मसें भी नहीं भीगी थीं, लेकिन जुम्मी का यौवन ठहाठे मारता समुद्र था। वली मुहम्मद व जुम्मी के अनमेल विवाह का दुष्परिणाम यह होता है कि जुम्मी का ससुर उससे नाजायज सम्बन्ध बनाकर उसका यौन शोषण करता है और जुम्मी अपनी इज्जत की डर से अपने शोषण को चुपचाप सहन करती रहती है।

मेवात समाज में बाल विवाह के प्रमुख रूप से दो कारण हैं। पहला कारण तो वहाँ शादी को झंझट माना जाता है। दूसरा कारण शादी में मिलने वाला भारी–भरकम दान–देहज है। उपन्यास की पात्र मजीदन कहती है, "अच्छो है आदमी को जितनी जल्दी इन झंझटन सू पीछो छूट जाए।"[8] लड़की पराया धन समझी जाती है, अतः अच्छा है जल्दी से जल्दी उस धन को अपने घर पहुँचाया जाए। फिर भला लड़की की पढ़ाई लिखाई की चिन्ता किसे है ? लड़की की पढ़ाई के बारे में यह तर्क देकर "पढ़ी लिखी सू कौन सी हमने थाणेदारी करानी है। घर को ही तो काम धन्धो कराणो है।"[9] पीछा छुड़ा लिया जाता है तथा जल्दी से जल्दी उसकी शादी कर दी जाती है। पढ़ाई लिखाई के नाम पर उसका दो–चार क्लास पढ़ लेना, 'बीजणा–चँगेरी' बना लेना व दो चार कपड़े सीलना सीख लेना ही सर्वगुण सम्पन्न समझा जाता है।

मेवात समाज में बाल विवाह इतनी अधिक मात्रा में होते हैं कि परिवार में जितनी भी लड़कियाँ या लड़के होते हैं सभी की शादी एक साथ कर दी जाती है। कभी–कभी तो ऐसा अवसर होता है जब दुल्हे व दुल्हन की आयु महज एक या दो वर्ष की होती है और शादी–विवाह की सभी रस्म दुल्हे–दुल्हन के माता–पिता उनको गोद में लेकर पूरा करते हैं।

बाल विवाह का दूसरा कारण शादी में मिलने वाला भारी–भरकम दहेज भी है। मुबारक अली की शादी बाल्यावस्था में इसलिए की जा रही है कि "ऐसा घर किस्मत सू ही मिले है। छोरी का बाप पटवारी है और दो भाई सिरकारी मुलाजम है। सुनी है तीनूँ बाप–बेटान् की इनसे ऊपर की कमेर इतनी है के तनखा तो उनकी सूखी सट बच जावे है।"[10] तात्पर्य यह कि मुबारक की शादी के समय लड़की को नहीं बल्कि लड़की के परिवार की आय को देखा जाता है, ताकि पता लगाया जा सके, वह शादी में कितना दहेज दे सकता है। मुबारक अली की शादी के बाद शकीला समझ पाती है कि उसकी शादी की इतनी जल्दी क्यों मची हुई थी। "दहेज में मुबारक अली को इस तरह पाट दिया जायेगा। उसकी समझ में अब आ रहा है उन सूक्तियों का अर्थ जिसके आगे उसकी कोई सुनने को तैयार नहीं था। हवेली के चौक में दूर–दूर तक फैला सामान शकीला और उसकी नसीहत का जैसे मखौल उड़ा रहा है। एक तरफ खड़ी नई मोटर साइकिल जैसे रह–रहकर घूर रही है।"[11] अगर शादी में दहेज कम मिलता तो दुल्हन को तंग किया जाता है व दहेज लाने के लिए बाध्य किया जाता है। जैनब की शादी के समय दहेज में मोटर साइकिल नहीं देने के कारण उसका पति उससे बात नहीं करता है, फलस्वरूप उसे मोटरसाइकिल दी जाती है जिससे उसके व्यवहार में बदलाव आता है।

एक सर्वे के आधार पर मेवात में 70 प्रतिशत बाल विवाह होते हैं और अगर मेवात में मेव जाति की बात करें तो यह प्रतिशत 90 तक पहुँच जाता है। मेव, गुर्जर, कुम्हार, हरिजन जैसी जातियां बाल विवाह में सबसे आगे हैं। कुछ घटनाएँ तो ऐसी होती हैं कि शादी पालने में ही होती है।

बाल विवाह से न तो लड़के–लड़कियों को पढ़ाई का मौका ही मिल पाता है न ही अपने आपको समझने का। फलस्वरूप बाल विवाह का परिणाम भी बुरा ही होता है। मेवात समाज में बढ़ते तलाक, महिलाओं के प्रति होने वाली घरेलू हिंसा, अवैध सम्बन्ध आदि बाल विवाह के ही परिणाम हैं। मुबारक अली बड़ा होने पर अपनी बचपन की संगिनी शगुप्ता को तलाक दे देता है तो मैना का पति उसको मार–पीटकर छोड़ने की धमकी देता है। मोहसिना बाल विवाह के परिणाम पर टिप्पणी करती हुई कहती है, "हमारा मेवन् में एक तो बालक–छोटा पढ़े ना है ... खुदा–ना–खास्ता कोई दो–चार जमात पढ़ जाए और ऊपर सू कहीं सिरकारी मुलाजम हो जाए तो ऊ सबसे पहले ... अपणी वा घरवाली ए तलाकेगो जासू वाको निकाह छोटी उमर में हुओ है।"[12]

कुपोषित बच्चों की समस्या भी बाल विवाह का ही परिणाम है। कम उम्र में शादी होने के कारण बच्चे भी कम उम्र में ही पैदा होते हैं जिसके कारण न तो बच्चे ही स्वस्थ पैदा होते हैं और न ही मां का पूर्ण विकास हो पाता है। हालाँकि उपन्यासकार किसी कुपोषित बच्चे की चर्चा नहीं करता है लेकिन सच्चाई यह भी है कि मेवात में ही नहीं बल्कि जहाँ भी बाल विवाह होते हैं वहाँ कुपोषण के शिकार बहुत से बच्चे होते हैं। जिससे शिशु मृत्युदर भी वहाँ अधिक पाई जाती है।

(द) जनसंख्या वृद्धि

मेवात में आज भी बच्चों को खुदा की इनायत समझा जाता है। परिवार नियोजन के साधनों का न तो वहाँ ज्ञान है और न ही कोई अपनाना पसंद करता है। नसबन्दी कराना वहाँ पाप समझा जाता है। दादी जैतूनी कहती है "बेटी ई (सन्तान) तो खुदा की नैमत है और वाका रस्ता में अडंगा लगाणो अच्छी बात नहीं है। बालक छोटा तो जितनी जल्दी हो जाएँ उतनो ही अच्छो है।"[13] इतना ही नहीं बल्कि जब तक व जिस उम्र तक बच्चे होते रहें वह भी अचछा है। यही कारण है कि शायद ही मेवात में किसी के यहाँ पाँच–सात बच्चों से कम हों। कभी–कभी सास व बहु दोनों साथ जच्चा बनती हैं।

परिवार नियोजन के साधनों का अभाव व बच्चों को खुदा कि नियामत समझ जाना तो जनसंख्या वृद्धि का कारण है ही, साथ में पुत्र की चाह भी जनसंख्या वृद्धि का बहुत बड़ा कारण है। मेवात समाज की मानसिकता है कि 'पुत्र के बिना औरत की कोई कद्र नहीं।' यही कारण है कि वहाँ अधिकांश स्त्रियां पुत्र के लिए पीरो–फकीरों व दरवेशों के यहाँ गण्डे–ताबीज के लिए चक्कर लगाती रहती हैं। बत्तो, सोनदेई, पारो, शकीला आदि स्त्रियों के, सन्तान के नाम पर केवल लड़कियाँ ही हैं जिसके कारण वे पुत्र की चाह में सन्तान पैदा करती रहती हैं तथा पीरों–दरवेशों के चक्कर में पड़ती हैं।

(य) आधारभूत सुविधाओं का अभाव (शिक्षा, चिकित्सा, यातायात, पेयजल)

ऐसे तो भारत के अधिकांश गांवों की हालत पिछड़ेपन के मामले में एक जैसी है। जहाँ तक मेवात की बात है तो वह इसमें दो कदम आगे हैं क्योकि मेवात क्षेत्र राजस्थान,

हरियाणा व उत्तरप्रदेश का सीमान्त क्षेत्र है इसलिए राज्य सरकारें तो उसकी उपेक्षा करती ही हैं, केन्द्र सरकार भी उसकी उपेक्षा करती है।

मेवात क्षेत्र सामाजिक विकास के आधारभूत साधनों जैसे शिक्षा, चिकित्सा, यातायात सुविधा, शुद्ध पेयजल आदि की व्यवस्था से अभी तक वंचित है। काला पहाड़ में उपन्यासकार लिखता है "इन बदकिस्मत गाँवों को अँग्रेजों ने तो जरूरी सहूलियतों से मरहूम किया ही बल्कि आजादी के बाद भी ये गाँव उन सहूलियमों से मरहूम है।"[14]

मेवात के गाँवों में अधिक से अधिक प्राथमिक या मिडिल तक स्कूल हैं। उसके बाद की पढ़ाई के लिए वहाँ के लड़के–लड़कियों को या तो जिला मुख्यालय पर जाना होता है या तहसील मुख्यालय पर। जिसके कारण अधिकांश बच्चे बीच में ही स्कूल छोड़ देते हैं और घर का काम संभाल लेते हैं। मुबारक अली जब बारहवीं पास करता है तो उसे अपने आगे के अध्ययन के लिए दिल्ली जाना पड़ता है, इसी प्रकार मुमताज को भी उच्च अध्ययन के लिए जिला मुख्यालय पर जाना होता है। शकीला की फौज का एक–एक फौजी मैना, फोजिया, शलीमा, फ़िरोजा आदि अपनी पढ़ाई बीच में ही छोड़ देती है, क्योंकि वहाँ न तो आगे पढ़ने के लिए शिक्षा की व्यवस्था है और न ही उनके घरवालों की इच्छा।

गाँव मे अगर स्कूल है भी, तो उनमें न तो ढंग की बिल्डिंग ही है और न पढ़ाने वाले अध्यापक ही। स्कूल की बिल्डिंग ऐसी है जिनकी बरसात में छत टपकती रहती है जिसके कारण बरसात में इनकी छुट्टी रहती है। स्कूलों में अध्यापकों की कमी व अध्यापकों की लापरवाही शिक्षा व्यवस्था का और बंटाधार करती हैं। अध्यापक की नौकरी को मुफ्त की तनख्वाह वाली नौकरी माना जाता है। चाँदमल कहता है, "बस एक बार चिपक जाओ फिर देखो कैसी मौज ही मौज है। मदरसा में जाओ या मत जाओ ... जाओ भी तो पढ़ाओ या मत पढ़ाओ। कोई पूछनेवाला ना है।"15

शिक्षा व्यवस्था की दरिद्रता के साथ–साथ चिकित्सा जैसी सुविधा से भी मेवात क्षेत्र मरहूम है। शायद ही किसी गाँव में वहाँ अस्पताल या डिस्पेंसरी हों यहाँ तक कि तहसील में भी अस्पताल के नाम पर छोटी–मोटी बिल्डिंग व एक दो डॉक्टर होते हैं और वो भी अधिकांश समय नदारद रहते हैं। उचित चिकित्सा व्यवस्था नहीं मिलने के कारण वे लोग या तो पीर–फकीर से गण्डे–ताबीज लेते हैं या फिर जिनके पास पैसे हैं वे शहरों की और भागते हैं।

छोटी–छोटी बीमारियों के लिए भी यहाँ के लोग चिकित्सा व्यवस्था की कमी के कारण झाड़े लगवाते हैं। पीलिया, कनफेड़ जैसे रोगों के लिए झाड़े लगवाने का भी एक कारण उचित चिकित्सा व्यवस्था का अभाव है। उचित चिकित्सा व्यवस्था के अभाव में वहाँ जीवन प्रत्याशा आयु भी बहुत कम है। व्यक्ति युवावस्था में ही वृद्ध सा दिखने लगता है। नपुंसकता जैसी बीमारी जिसे उपन्यासकार हनीफ व मुमताज के पति के रूप में दिखाता है चिकित्सा व्यवस्था की कमी के कारण ही है। चिकित्सा व्यवस्था के अभाव के कारण ही वहाँ शिशु मृत्युदर भी अधिक पायी जाती है।

यातायात व्यवस्था के नाम पर मेवात में केवल सड़कें हैं। अधिकांश गाँव तो – प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना' के बावजूद भी सड़कों से नहीं जुड़ पाए हैं। सड़क हैं तो साधन नहीं हैं। गाँव से शहर के लिए जीप, कार या 'जुगाड़' चलते हैं। 'काला पहाड़' का सलेमी प्रधानमंत्री के समारोह में जुगाड़ से जाता है तो 'बाबल तेरा देस में' की बत्तो सन्तलालदास के मेले में जीप से जाती है अर्थात् 'काला पहाड़' से 'बाबल तेरा देस में' की यात्रा के दौरान भी वहाँ बस या रेल जैसे साधन का अभाव बना हुआ है।

रेल यातायात वहाँ अभी भी सपना बना हुआ है। मेवात के शायद ही किसी गाँव में रेलवे व्यवस्था हो, रेलवे लाइन की घोषणा हर साल की जाती है लेकिन उसका काम पंचवर्षीय योजना की घोषणा तक ही सिमट कर रह जाता है।

पानी व बिजली की समस्या भी मेवात में अभी तक बरकरार है। पीने के लिए शुद्ध पेयजल का अभाव है। वहाँ की आय का एकमात्र साधन कृषि भी वर्षा पर निर्भर है। सिंचाई के लिए नहर का अभाव है। कृषि व्यवस्था का पूर्ण रूप से वर्षा पर निर्भर होने के कारण वहाँ बेरोजगारी जैसी समस्या मुँह बाए खड़ी है। बेरोजगारी की वजह से ही एक और समस्या खड़ी हो जाती है पलायन की।

मेवात क्षेत्र से लोग पलायन करके रोजगार की तलाश में शहरों की ओर भाग रहे हैं। काला पहाड़ का मनीराम कहता है "गाँवों में रहके कोई भूखो थोड़े ही मरणो है। न कोई रुजगार, न धंधा ... लावणी भी ना रही ... जब पेट ही भरणो मुसकल हो जाय तो आदमी यही करेगो।"[16]

मेवात क्षेत्र में बिजली का भी यही हाल है। यहाँ के कई गाँव तो ऐसे हैं जिनमें अभी तक बिजली नहीं पहुँची है। आजादी के 60 वर्ष बाद भी गाँवों में बिजली नहीं हैं जिन

गाँवों में बिजली है वहाँ भी अधिक से अधिक दिन भर में 4–6 घंटे बिजली आती हैं इससे न तो खेती का ही काम हो पाता है और न ही मनोरंजन का। लागों के घरों में इलैक्ट्रोनिक सामान टी.वी. आदि बंद ही पड़ा रह जाता है। 'बाबल तेरा देस में' के गाँव में टी.वी., फ्रीज, कूलर आदि हैं लेकिन बिजली की समस्या है। बिजली के बिना इन साधनों की कोई उपयोगिता नहीं है। फ्रीज कुछ दिनों बाद बर्तन रखने की अलमार बन जाता है तो कूलर अलमारी में पैक हो जाता है।

अगर देखा जाए तो आधारभूत विकास के मामले में मेवात क्षेत्र ही नहीं बल्कि भारत के प्रत्येक गाँव एक जैसे हैं। भारत के अधिकांश गाँव पिछड़े है।, विकास का मुंह उन्होंने अभी तक देखा नहीं है। सत्यकाम लिखते हैं "प्रजातंत्र, भ्रष्टाचार और पिछड़ेपन के बीच भारत में अटूट गठबन्धन है। प्रजातंत्र और उसके सिमौर समाज को लूट रहे हैं और मजे कर रहे हैं। दूसरी ओर, आजादी के बावन वर्षों के बाद भी गाँवों में सड़कें नहीं हैं, स्वास्थ्य की कोई व्यवस्था नहीं है, यहाँ तक की कई गाँवों में तो पीने का पानी भी नहीं है, पानी कोसों दूर से ढ़ोकर लाना पड़ता है। गाँधी का स्वराज अभी तक गाँवों तक नहीं पहुँच पाया है। गाँधी को भी राजधानी में बंधक बनाकर रख लिया है।"[17] यह सही है कि सारी उत्तर आधुनिकता, सारा विकास, सारी चकाचौंध केवल राजधानी तक ही सीमित होकर रह गई है। भारत के गाँव अभी ठीक ढंग से आधुनिक भी नहीं हो पाए हैं। उपन्यास में आई 'हेवली' केवल मेवात समाज के ही नहीं बल्कि भारतीय गाँवों के पिछड़ेपन, अज्ञानता व बन्द समाज का प्रतीक है जो ज्ञान की किरण चाहती है जरूरत है तो सिर्फ उसमें उस किरण के प्रवेश करने–कराने की।

भारतीय राजनीति को गाँवों के पिछड़ेपन के लिए पूर्ण रूप से दोषी नहीं ठहराया जा सकता। भारतीय सरकारों ने समय–समय पर ग्रामीण विकास के लिए अनेक स्कीम, कार्यक्रम व योजनाएँ बनाई। इंदिरा गाँधी महिला योजना, अन्त्योदय योजना, राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम, जवाहर ग्राम समृद्धि योजना, स्वर्णजयन्ती ग्रामयोजना, राष्ट्रीय पोषाहार मिशन येाजना, प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम, पल्स पोलियो कार्यक्रम आदि–आदि। इन सबके बावजूद भी भारतीय गाँवों में कोई खास सुधार नहीं हुआ इसका एक कारण भारतीय गाँवों के तथाकथित वे ठेकेदार भी हैं जो अपने आपको गाँवों का रखवाला कहते हैं। योजनाओं का अधिकांश लाभ इन्हीं ठेकेदारों – सरपंच, बी.डी.ओ., तहसीलदार आदि की जेब में जाता है। 'बाबल तेरा देस में' का सरपंच दीन मोहम्मद (सकीला की जगह पर)

बी.डी.ओ. से साँठ–गाँठ करता हुआ ग्रामीण विकास के नाम पर पैसा खाता है। शकीला विकास योजनाओं के नाम पर मिलने वाले पैसों के बँटवारे के बारे में बताती है "असल लागत सू दुगना–तिगना का जो ये बिल बणे हैं, इनमे पूरी पंचात सू लेके बीडियो ... यहाँ तलक कि एम.एल.ए. को भी हिस्सा होवे है। बिना हिस्सेदारी के ई बीडियो तो दूर रहो, ये एम.एल.ए. भी बिलन्ने पास ना होण देए हैं।"[18] यही कारण है कि इतनी सारी तमाम ग्रामीण विकास योजनाओं के बावजूद भी भारतीय गाँवों में मूलभूत विकास की कमी है।

सरकारी योजनाओं के अतिरिक्त बहुत सी गैर सरकारी संस्थाएँ (एन.जी.ओ.) भी अपने आपको ग्रामीण विकास में लगी हुई संस्थाएँ घोषित करने का दावा करती हैं। उनकी सच्चाई भी यही है कि वे गाँवों में मात्र अपनी संस्था का बोर्ड लगाकर राष्ट्रीय–अन्तर्राष्ट्रीय स्तर से फण्ड वसूल करती रहती हैं। विकास का काम फाइलों में होता रहता हैं 'बाबल तेरा देस में' में भी एन.जी.ओ. की कुछ कार्यकत्री ग्रामीण विकास के नाम पर आती हैं। गाँव के लोगों को तो इन संस्थाओं के बारे में पता ही नहीं है। दादी जैतूनी कहती हैं, "ई संस्था–फंस्था होवे कहा बिमारी है ? आजकल बहोत सुणा हाँ याका बारा में हमारा मेवात में भी बहोत उगी पड़ी बताई।"[19] ग्रामीण विकास के नाम पर इनकी सच्चाई यह है कि "समाज सेवा के नाम पर संस्थाएँ बनाकर ऐसे लोगों ने लूट मचाई हुई है! गरीब और अनपढ़ों के नाम पर मिलने वाला देश और विदेश का पैसा इन्हीं की जेब में तो जा रहा है।"[20]

इस प्रकार तमाम सरकारी एवं गैर सरकारी योजनाएँ जो ग्रामीण विकास व ग्रामीण सेवा के नाम पर बनाई जाती हैं वे न तो ग्रामीण विकास करती हैं और न ही गाँव की सेवा। सरकारी योजनाएँ तो फिर भी कुछ करती हैं, क्योंकि अगले चुनाव का डर लगा रहता है लेकिन गैर सरकारी संस्थाएँ तो केवल अपनी ही सेवा करती हैं।

ग्रामीण क्षेत्र की आधारभूत सुविधाओं के अभाव के लिए जहाँ हम बहुत हद तक भारतीय राजनीति एवं प्रशासन व्यवस्था को दोष दे सकते हैं वहीं ग्रामीण समाज में विद्यमान उसकी आन्तरिक बुराइयों के लिए समाज स्वयं भी जिम्मेवार होता है। प्रत्येक समाज में कुछ न कुछ अन्धविश्वास प्रचलित होते हैं जिनको वह चाहकर भी, उनकी सच्चाई जानते हुए भी नहीं छोड़ना चाहता। मेवात समाज में पीरो–फकीरों से सन्तान के लिए भभूत, गण्डे–ताबीज लेना ऐसी ही बुराइयाँ हैं। बत्तो कल्लन दरवेश के ढोंग को जानते हुए भी उसके प्रति अन्धश्रद्धा रखती है। इसी तरह बकरे की बली जैसी भयानक प्रथा, सन्नत जैसी

परम्परा आज भी उस समाज के खोखलेपन को सिद्ध करती है। पीलिया व कनफेड जैसी बीमारी के लिए वे झाड़ा ही लगवायेंगे चाहे उन्हें कितनी ही चिकित्सा सुविधा दी जाए। अतः जरूरी है कि आधारभूत सुविधाओं के साथ–साथ ग्रामीण विकास के लिए वहाँ के लोगों की सोच को भी बदला जाये। ग्रामीण विकास के लिए केवल सरकार पर ही निर्भर नहीं रहना होगा बल्कि गाँव के लोगों को भी उससे जुड़ना होगा। ऐसा ही एक प्रयास शकीला अपनी 'फौज' के माध्यम से करती हुई नज़र आती है।

(ii) नारी समस्या और 'बाबल तेरा देस में'

उपन्यास का शीर्षक उपन्यासकार ने जिस दोहें से लिया है वह दोहा है :

'बाबल तेरा देस में, एक बेटी एक बैल।
हाथ पकड़के दीनी जामें, परदेसी के गैल।।'

मेवाती कवि सादल्ला

सैकड़ों वर्ष पहले लिखा गया यह दोहा आज भी भारतीय समाज में पूर्णरूप से सत्य है। उपन्यास के शीर्षक में आया 'बाबल' शब्द उस पिता का सूचक नहीं है जो अपनी पुत्री को पुत्र के समान ही प्यार करते हुए लालन–पालन करता है बल्कि यहाँ 'बाबल' शब्द उस पितृसत्तात्मक व्यवस्था का प्रतीक है जहाँ स्त्रियों का केवल एक ही धर्म है – पुरुषों की सेवा व उनका शोषण सहन करते हुए उनके खिलाफ उफ़ तलक भी नहीं करना।

उपन्यास मेवात समाज के बहाने नारी समस्या को जमीन से उठाता है। यहाँ स्त्रियों का शोषण करने वाला कोई बाहरी तत्व नहीं है बल्कि उसी के सगे सम्बन्धी उसका शोषण कर रहे हैं। यहाँ समृद्ध संसार की स्त्रियों की समस्या नहीं जो समस्या के नाम पर उन्मुक्त जीवन व मुक्त भोग की मांग करती है, बल्कि यहाँ तो उस संसार की नारियों की समस्या है जहाँ नारी अपने ही पहरेदारों के बीच असुरक्षित है।

अपने ही सगे संबंधियों व परिवार वालों के द्वारा हो रही यौन हिंसा को उपन्यासकार प्रमुखता से उठाता है। परिवार के सदस्य ही पुत्रियों व पुत्र–वधूओं के साथ यौन हिंसा करते हैं। उपन्यास की पात्र जुम्मी, हसीना, पारो आदि अपने ही परिवार में क्रमशः अपने ही ससुर व पिता द्वारा यौन हिंसा का शिकार होने वाली स्त्रियाँ है। जुम्मी अपने ससुर

द्वारा हो रहे अपने यौन शोषण को यह कहकर दबा देती है "अब तुम चाहे याहे रजामंदी कह लेओ या जबरदस्ती, पर मरनो तो आखिर हमन्ने ही पड़े है।"[21] क्योंकि पितृसत्तात्मक समाज में नारी की कोई नहीं सुनता। अगर जुम्मी अपने पति से इसकी शिकायत करती तो उसका पति उसे तलाक देकर छुटकारा पा लेता, लेकिन मरना फिर भी जुम्मी का ही होता है। हसीना यदि अपने शोषण के खिलाफ आवाज भी उठाती है तो उसका मुँह यह कहकर बन्द करवा दिया जाता है "क्यों जग हँसाई करवाओ हो ? कल अगर ई बात हवेली सू बाहर फूटगी तो कोई तमने बोलण भी ना देएगो के अब या हवेली का मरद अपनी ही बहू बेटीन पे हाथ गेरन लगा है।"[22]

ऐसा नहीं है कि मेवात समाज में ही स्त्रियाँ अपने परिवार में यौन उत्पीड़न का शिकार होती हैं बल्कि मेवात में बहुत दूर से आई पारो (चन्द्रकला) भी अपने ही परिवार में अपने पिता द्वारा उत्पीड़ित स्त्री है, जो मौका देखकर फत्तू (मेवाती) के साथ भाग आती है। पारो का पिता उसकी भाभी का भी यौन शोषण करता है। पारो की भाभी अपने ससुर के इसी आचरण के बारे में कहती है "एक बात है जा आदमी की नीत अपनी सगी बेटी पे खराब हो जाए बाको कहा ईमान। मैं तो फिर जा घर की बहूँ हूँ बाके छोरा की लुगाई ऊभी बेटी समान।"[23] पारो की भाभी की भी यही समस्या है कि आखिर शिकायत करे तो वह किससे करे। उसका पति तो हमेशा शराब के नशे में चकनाचूर रहता है तथा वह पूर्णरूप से अपने पिता पर निर्भर है।

भारतीय सामाजिक ढाँचे में स्त्री अपने ही परिवार में असुरक्षित है इसका एक उदाहरण 'मैना' भी है। उसका पति ही उसका दुश्मन है। मैना की पढ़ाई लिखाई के कारण उसका पति अन्दर ही अन्दर कुण्ठित रहता है और मैना पर पड़ोस के लड़के से इश्क फरमाने का आरोप लगाकर उसकी पिटाई कर घर से निकाल देता है। यही स्थिति जैनब की है, जैनब का पति उसका दुश्मन इसलिए है कि उसे दहेज में मोटर साइकिल नहीं मिली।

स्त्रियों के प्रति होने वाली पारिवारिक हिंसा में या तो इधर तेजी आई है या फिर संचार माध्यमों की सक्रियता के कारण ऐसी घटनाओं की सूचना ज्यादा से जयादा लोगों तक पहुँचने लगी है। महिलाओं के प्रति पारिवारिक हिंसा का मामला मेवात क्षेत्र या केवल मुस्लिम समाज का नहीं बल्कि पूरे भारतीय समाज का है। सत्यकाम इसीलिए लिखते हैं "यह कथा केवल मेवात की महिलाओं की नहीं है बल्कि सम्पूर्ण भारत की महिलाओं की,

खासतौर पर ग्रामीण महिलाओं की कथा है। यह किसी बिरादरी, जाति, धर्म या समुदाय की कथा भी नहीं है। यह मात्र औरत की असलियत है।"[24] नंदिता गाँधी व नंदिता शाह अपनी पुस्तक 'इश्युज एट स्टेक' में कहती हैं कि आमतौर पर बलात्कार करनेवाला व्यक्ति जानकार होता है।

वैसे तो प्रतिदिन ही महिलाओं के प्रति होने वाली घरेलू हिंसा से पत्र–पत्रिकाओं के पेज भरे रहते हैं, लेकिन हाल ही में जिन दो मामलों की ज्यादा चर्चा हुई है, उनमें एक है इमराना का व दूसरा गुड़िया (शीला बाई) का। अपने ससुर द्वारा बलात्कार की शिकार इमराना के मामले में देवबंद शाखा का फतवा आया कि वह अब अपने ससुर की ब्याहता और अपने शौहर की 'हराम' है। लेकिन भारतीय जनवादी महिला समिति और अन्य अनेक महिला संगठनों के सक्रिय हस्तक्षेप से फतवा क्रियान्वित नहीं हो सका।

दूसरा मामला आया गुड़िया का। दोनों पतियों (पुरुषोत्तम कुशवाहा व अजब सिंह), बिरादरी के लोगों, उलेमाओं, शरीयत के व्याख्याकारों के बीच घिरी गुड़िया ने कहा कि वह वही फैसला लेगी जो शरीयत के मुताबिक जायज होगा। फैसला हुआ कि गुड़िया अपने पहले पति के पास लौट जाए, गुड़िया ने मान लिया। यद्यपि वो इससे पहले अपनी इच्छा प्रकट कर चुकी थी कि वो अपने वर्तमान पति के साथ ही रहना चाहती है।

दोनों घटनाओं से दो बात तो साफ है कि पारिवारिक हिंसा (यौन–शोषण) केवल किसी क्षेत्र विशेष तक सीमित नहीं है बल्कि वह सम्पूर्ण भारतीय समाज की समस्या है। दूसरी बात यह कि किस तरह एक स्त्री का स्त्रित्व तो गौण हो गया और उसकी धार्मिक पहचान मुख्य हो गई। यही कारण है कि अधिकांश स्त्रियाँ पारिवारिक हिंसा के खिलाफ आवाज उठाने में सकुचाती हैं।

26 अक्टूबर 2006 से लागू होने वाला 'घरेलू हिंसा से स्त्रियों की सुरक्षा अधिनियम' पारिवारिक हिंसा से स्त्रियों की रक्षा करने वाला एक ठोस कदम साबित हो सकता है, यदि स्त्रियाँ इसके बारे में जाने–समझें। यह भी संभव है कि ग्रामीण महिलाओं तक इस 'अधिनियम' की गूंज भी नहीं पहुँचे और यह कानून भी अन्य कानूनों की तरह केवल पढ़ी लिखी महिलाओं तक ही सिमट कर रह जाए।

'बाबल तेरा देस में' में जो दूसरी नारी–समस्या प्रमुख बन पड़ी है वह है, मेवात समाज में हो रही स्त्रियों की खरीद फरोख्त। मेवात में अधिकतर स्त्रियाँ बिहार, हैदराबाद,

उत्तरप्रदेश के मुस्लिम क्षेत्रों से लाई जाती हैं। चूंकि मेवात के मेव भी इस्लाम धर्मानुयायी हैं अतः वे मुस्लिम औरतें ही लाना अधिक पसंद करते हैं। मेवात में इन क्षेत्रों से स्त्रियाँ खरीदकर या निकाह करके लाई जाती हैं। मेवात में इनकी स्थिति बदतर होती है और ये 'मुहाज़िर' से भी बदतर जिन्दगी व्यतीत करती हुई देखी जाती हैं।

हैदराबाद या अन्य राज्यों से जयादातर विधुर या दिलफेंक किस्म के इंसान स्त्रियाँ लाने का काम करते हैं। वे पुरुष उन्हें कुछ दिनों तक अपने साथ रखकर फिर किसी के हाथों बेच देते हैं। मेव इस मामले में इस्लाम में चार तक बीबियाँ रखने का तर्क देते हैं। जहाँ तक इन औरतों की बात है तो वे ज्यादातर कम उम्र की कमसिन लड़कियाँ होती हैं। जिसके माँ–बाप इतने गरीब होते हैं कि न तो इन्हें पाल–पोष सकते हैं और न ही इनका विवाह कर सकते हैं। मेवात आदि जगहों से पहुँचे हुए लोगों को ये 'सेठ' कहकर पुकारते हैं और ये इन्हें खुदा की इनायत जैसे लगने लगते हैं। जिसके कारण हैदराबादी अपनी लड़कियों को इन उम्रदराज़ पुरुषो के पल्ले बाँध कर छुट्टी पाते हैं। दादी जैतूनी इसी पर व्यंग्य करती हुई कहती हैं "बिन्ना बन्ना बनवारा के कैसो ब्याह और इसके बिना कैसी ब्याहता। ब्याहता को मतलब है अपना मेल सू निकाह होनो एक दूसरा ए मन सू कबूल करनो।"[25]

हैदराबाद से न केवल मेवात के लोग बल्कि अरब के शेख लोग भी लड़कियों को पैसे के बल पर खरीद लेते हैं और निकाह के नाम पर उनके जिस्म को प्राप्त कर लेते हैं। जब तक वे इस मुल्क में रहते हैं तब तक वै पैसे से लड़की के परिवार वालों को खुश रखते हैं। अपने मुल्क में जाते ही वे न तो अपनी हैदराबादी पत्नी को याद करते हैं और न ही आर्थिक मदद भेजते हैं। अरब शेखों के बारे में शकीला बताती है "इन अरबी शोहदों को दरअसल इस मुल्क में मौज–मस्ती के लिए एक जिस्म चाहिए, इसलिए शरई आड़ में हमारी गरीबी का फायदा उठाकर दौलत के बल पर निकाह कर हमें हासिल कर लेते हैं। ये हमें अपने साथ ले जाएं तो तसल्ली हो जाती है मगर ऐसा होता नहीं है। ये हमे यहीं छोड़ जाते हैं हमारे रहमो करम पर। शुरुआत में ये हमें रुपया भेजते हैं इसलिए कि कभी इस मुल्क में दोबारा आएँ तो हमारा जिस्म इन्हें आसानी से मिल जाए मगर धीरे–धीरे यह रुपया भी आना बन्द हो जाता है।"[26] अरब के शेखों का तो यह आलम है कि एक लड़की के बाद अगर दूसरी उससे कमसिन लड़की दिख जाती है तो वे उसके लिए पैसों का ढेर लगा देते

हैं। माँ–बाप की मजबूरी यह होती है कि वे इतने गरीब होते हैं कि बिना दहेज के उनकी शादी नहीं कर सकते। फिर वही सवाल उठता है तो दादी जैतूनी पूछती है "दहेज ना होएगो तो जरूरी है औलाद पैदा करनी। यासू तो बढ़िया है पैदा होतेई इनका टेंटुआ दबा देएँ।"[27] हैदराबाद में होने वाली स्त्रियों की खरीद–फरोख्त को अगर हम शकीला के शब्दों में कहें तो "अरब के शेखों व दिल्ली के सेठों के लिए तो मंडी है हमारो हैदराबाद।"[28]

चाहे हैदराबाद हो, बिहार या फिर देश का कोई भी हिस्सा अगर वहाँ से स्त्री निकाह करके लाई जाती है और उन्हें पत्नी बनाकर रखा जाता है तो ठीक है लेकिन समस्या तब होती है जब खरीदी हुई औरत कटी पतंग की तरह इधर–उधर हाथों में पड़ती रहती है, ठीक समीना की तरह। समीना को दीन मोहम्मद (मेवात में स्त्रियों का दलाल) हैदराबाद से हनीफ के लिए लाता है लेकिन हनीफ उसे तलाक दे देता है। बाद में समीना कटी पतंग की तरह इधर–उधर भटकती रहती है। दादी जैतूनी उसकी इसी दुर्दशा को देखकर कहती है "ऐसो करो रोज–रोज का बेचणा सू अच्छो है याहे तम याका माँ–बाप के पै ही भिजवा देओं कम–सू–कम याकी माटी तो खराब ना होएगी।"[29] 'काला पहाड़' की मेमन को वापिस हैदराबाद भेज दिया जाता है, लेकिन समीना को वापिस नहीं भेजा जाता क्योंकि यहाँ तक आते आते उपन्यासकार जान जाता है कि वहाँ भी इनकी दुर्दशा ही होगी। दादी जैतूनी कहती है, "ई अपणा माँ–बाप कै पे उल्टी चलीगी, तो तू कहा समझ री है याका माँ–बाप याहे देखके आरतो उतारेंगा। बेटी, हूँ जाके भी याकी फिर यही गत बण्नी है।"[30] मेवात में केवल अकेली समीना नहीं बल्कि न जाने कितनी ऐसी समीना हैं जिनका भविष्य अधर में है। शकीला भी हैदराबादी है लेकिन उसका चरित्र लेखक की वैचारिक कल्पना तथा आकांक्षा के सांचे में ढ़ला होने के कारण यथार्थ से थोड़ा दूर है, यद्यपि प्रारम्भ में उसे भी अपने पति दीन मुहम्मद की बहुओं की अवहेलना व उत्पीड़न सहना पड़ता है। क्षमा शर्मा बाहर से लाई गई स्त्रियों के बारे में लिखती हैं, "दक्षिण में ही गरीब लड़कियों से कश्मीर, राजस्थान और दिल्ली के कुछ युवकों ने विवाह किया। दहेज बिलकुल नहीं लिया। लेकिन बाद में लड़कियों को वेश्यावृत्ति में धकेल दिया।"[31] यह सही है कि बाहर से लाई गई स्त्रियों को या तो आत्महत्या का रास्ता चुनना पड़ता है या वेश्यावृत्ति, क्योंकि कोई दूसरा रास्ता उनके पास नहीं होता है।

पंचायती राजव्यवस्था में महिला आरक्षण एवं उसकी यथार्थ स्थिति के निहितार्थ के सन्दर्भ में भी उपन्यासकार पितृसत्तात्मक समाज में नारी आरक्षण के नाम पर नारियों के

हो रहे शोषण की अच्छी खबर लेता है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 243घ में यह उपबंध किया गया है कि प्रत्येक पंचायत में प्रत्यक्ष निर्वाचन से भरे जाने वाले कुल स्थानों में से 1/3 स्थान महिलाओं के लिए आरक्षित होंगे। इसी के तहत उपन्यासकार ने मेवात समाज के साथ–साथ सम्पूर्ण उत्तर भारत में होने वाले पंचायती चुनाव का यथार्थ अंकन किया है।

पुरुषवादी समाज पहले तो एक महिला को सरपंच बनाने में ही आना–कानी करता है। पुरुष मानसिकता इस बात को मानने को ही तैयार नहीं है कि महिला भी शासन कर सकती है। चांदमल कहता है कि "तो याको मतलब ई हुओ रामचंदर के ई मुलक तो मुलक अब इन गांवन में भी ये बीरबाणी करेंगी हमारे ऊपर राज। अब यें देंगी हमनै हुकम। के हमनै कहा करनो है।"[32] जब उनकी समझ में आता है कि पंचायत में महिला का आरक्षण है तो वे महिला को घर से बाहर निकालकर चुनाव में खड़ा करने में आना–कानी करते हैं। अगर चुनाव में खड़ा भी करते हैं तो इस सोच के साथ "सरपंच बणके कौन सी वाहे पंचात करनी है, वाहे कौन सो पंचन के बीच में जाको बैठणो है। ऊ तो बस नाम की सरपंच रहेगी। सरपंची तो सारी काका दीनू ए करणी है। याहे तो बस कागज–पत्रन पर सैन करना पड़ेंगा।"[33] जिस समाज के पुरुषों की चुनाव से पहले की यह मानसिकता है, चुनाव के बाद क्या होगी, इसका सहज ही अंदाजा लगाया जा सकता है।

महिला आरक्षण के तहत शकीला चुनाव में जीत जाती है। गाँव में स्वागत शकीला का नहीं बल्कि उसके पति दीन मोहम्मद का किया जाता है। फूल–मालाएं दीन मोहम्मद के गले में डाली जाती हैं, क्योंकि चुनाव का उम्मीदवार तो घर की चार–दीवारी में बंद है। सरपंची भी शकीला का पति ही करता है। शकीला का अस्तित्व केवल कागज–पत्रों पर हस्ताक्षर करने तक ही सीमित रह जाता है। शकीला अपने इसी सीमित होते जा रहे अस्तित्व के प्रति सचेत होते हुए कहती है "क्या हमें बस दस्तावेजों पर दस्तखत करने के लिए सरपंच बनाया गया है।"[34]

देखा जाए तो मेवात में ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण उत्तर भारत में महिला सरपंच इसी स्थिति में आती देखी जाती हैं। भारतीय समाज व्यवस्था में पुरुष वर्चस्वता का यह सबसे विडम्बनात्मक यथार्थ है 'दस्तखत किसी और का हुकुम किसी और का' अगर हम इस विडम्बनात्मक यथार्थ पर गौर करें तो पाएंगे कि इसके कई निहितार्थ हैं। इसका एक निहितार्थ है कि इससे स्त्री के अस्तित्व और व्यक्तित्व के उभरने के अवसर खत्म हो जाते

हैं और वे केवल रबड़ स्टैम्प बनकर रह जाती हैं। हालांकि उपन्यास में शकीला पढ़ी–लिखी होने के कारण दीन मोहम्मद का विरोध करती है। स्वयं बी.डी.ओ. आफिस जाकर हस्ताक्षर करने लगती है, लेकिन एक सच्चाई यह भी है कि अशिक्षित महिलाएं भी सरपंच बनती हैं जो हस्ताक्षर के नाम पर अपना अंगूठा लगाती हैं। उन्हें यह भी पता नहीं रहता कि अंगूठा लगाने वाले कागज पर क्या लिखा है तथा न ही यह कि पंचायत में क्या हो रहा है और क्या नहीं।

इसका दूसरा निहितार्थ यह भी है कि इससे मौजूदा भ्रष्ट राजनीतिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था बरकरार रहती है। क्या यह सही नहीं है कि पुरुष प्रधान व्यवस्था महिला प्रधान व्यवस्था की अपेक्षा ज्यादा भ्रष्ट व बेइमान होती है। जब नेतृत्व स्त्रियों के हाथ में होता है तो व्यवस्था में वस्तुपरकता, न्याय व संवेदनशीलता का आधान रहता है। शकीला जब दीन मोहम्मद की मनमानियों से गले तक भर जाती है और उसे गांव की औरतों के ताने आते हैं तो एक तरह से अपने परिवार (दीन मोहम्मद) के खिलाफ संघर्ष शुरू कर देती है। सरंपची की सारी शक्तियां वह अपने हाथ में लेने का उपक्रम ही नहीं करती, बल्कि लेती भी है। भ्रष्ट बीडीओ के तबादले से लेकर गांव का विकास तक करवाने में शकीला कोई कसर नहीं छोड़ती है। इसी का परिणाम हुआ कि ''यह पहला मौका जब राज्य का राज्यपाल इस क्षेत्र की किसी महिला को उत्कृष्ट कार्यों के लिए सार्वजनिक रूप से सम्मानित करने जा रहा है।''[35]

पुरुष वर्चस्वता को जब कोई स्त्री चुनौती देती है तो पुरुष इसको सहन नहीं कर पाता। शकीला के साथ भी यही होता है। हवेली के शक्तिसंपन्न दकियानूसो की आंख की किरकिरी तो वह बनती ही है उस पर अनेक तरह के संदेह भी किए जाने लगते हैं। शकीला के बाद दूसरे चुनाव में सालिगराम सन्नार्थी की बहू पदमा गांव की सरपंच बनती है, परन्तु पदमा उस स्त्री का प्रतीक है जो पुरुष वर्चस्वता की समानुकूलता में ढली हुई है। उसका अपना कोई व्यक्तित्व नहीं है ''लेकिन पदमा के मार्फत इस तथ्य की पुष्टि अवश्य होती है कि दक्षिण पंथ में स्त्री की नियति सिर्फ एक उपयोगी वस्तु की तरह है।''[36]

मेवात में जैसे–जैसे धर्म के प्रति लगाव बढ़ता जा रहा है, वैसे–वैसे स्त्री की स्थिति भी बद से बदतर होती जा रही है। मेवों को सच्चा मुसलमान बनाने और शरियत व हदीस के अनुसार चलाने की गाज भी अंततः औरतों पर ही पड़ती है। इसका एक ताजा

उदाहरण है मेवों में तलाक की बढ़ती प्रवृत्ति। मुसलमानों की तरह मेवों में भी तलाक की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। आज से पांच–सात साल पहले तक तलाक की प्रवृत्ति मेवों में नाममात्र की थी। हिन्दू जातियों की तरह वहां मेवों में भी शादी को जन्म–जन्मांतर का रिश्ता माना जाता था, लेकिन अब परिस्थितियां बदल रही हैं। 'बाबल तेरा देस में' में तलाक–तलाक–तलाक द्वारा उत्पीड़ित कई स्त्रियां हैं। इनमें सगुफ्ता, समीना, व मुमताज हैं तथा जैनब इसकी दहलीज पर पहुंचते–पहुंचते इसलिए बच जाती है कि उसके पति को दहेज में मोटरसाइकिल दे दी जाती है।

अगर हम तलाक के कारण की पड़ताल करें तो वे कारण ऐसे हैं जिनमें स्त्रियों का कोई दोष नहीं है। सगुफ्ता को उसका पति मुबारक इसलिए तलाक दे देता है कि उसका विवाह बचपन में कर दिया गया था और अब मुबारक जेबीटी कर रहा है। अपनी बचपन की संगिनी से कोई पुत्र भी उसे प्राप्त नहीं हुआ है। बाल विवाह मेवात में तलाक की बढ़ती प्रवृत्ति का सबसे बड़ा कारण है। बाल विवाह के दौरान दूल्हा–दूल्हन न तो एक–दूसरे को समझ ही पाते हैं और न ही खुद के भविष्य को समझ पाते हैं। बड़ा होकर अगर संयोगवश लड़का नौकरी लग जाता है तो सबसे पहले वह अपनी बचपन की संगिनी को ही तलाक देता है, क्योंकि उसके साथ वह जीवन निर्वाह करना हीन व बेइज्जती का सवाल समझता है। मोहसिना कहती है "हमारा मेवन में एक तो बालक छोटा पढ़े न हैं, खुदा न खास्ता कोई दो–चार जमात पढ़ जाए और ऊपर सू कहीं सिरकारी मुलाजम हो जाए, तो सबसू पहले, ऊ अपणी वा घरवाली ए तलाकेगो जासू वाको निकाह छोटी उमर हुओ है।"[37]

तलाक का दूसरा कारण दहेज है। अगर किसी की शादी में मनमाना दहेज नहीं मिलता है तो शादी के बंधन से छुटकारा पाने के लिए सीधा सा रास्ता है तीन बार तलाक बोलना। जैनब के विवाह के पश्चात न तो उसका पति उससे बात करता है और न ही उसके सास–ससुर अच्छा व्यवहार करते हैं। नौबत तलाक तक पहुंच जाती है लेकिन जैनब के पीहर वालों द्वारा मोटरसाइकिल देने पर तलाक तक पहुंचा हुआ मामला टल जाता है। मोहसिना का भतीजा भी दिल्ली पुलिस में लगने पर अपनी बचपन की जीवन संगिनी को तलाक दे देता है, जिसके पीछे दहेज एक बड़ा कारण होता है। समीना को तलाक महज उससे छुटकारा पाने के लिए दिया जाता है, जिसके पीछे न दहेज ही कारण है और न बाल

विवाह ही, क्योंकि समीना हैदराबाद से खरीदकर लाई गई स्त्री है। इस प्रकार कुछ तलाक स्त्रियों से महज छुटकारा पाने के लिए भी दिए जाते हैं।

तलाक के उपर्युक्त कारणों एवं उदाहरणों से यही तथ्य सामने आता है कि पुरुषों ने तलाक को स्त्री से पीछा छुड़ाने का हथियार बना रखा है, जिसमें स्त्री चाहकर भी कुछ नहीं कर पाती। दादी जैतूनी तलाक की बढ़ती प्रवृत्ति पर खीझकर कहती है "या तलाक ने तो हमारी जिंदगी ख्वार कर राखी है, हँगो तो तलाक, मूतो तो तलाक।"[38] अपने आक्रोश को छिपा न पाने के कारण दादी जैतूनी पिच्च से थूक देती है। मानो उसका थूक पितृसत्तात्मक व्यवस्था पर पड़ता है, जिसमें स्त्री की जिंदगी नरक से भी बदतर है। मधुरेश लिखते हैं "उसका यह थूक सामने की धरती पर नहीं, गिरता, वह शरियत पर भी गिरता है, जिसकी आड़ में इस तरह के निरकुंश फतवों द्वारा स्त्री का जीना मुहाल हो गया है।"[39]

आदर्श निकाहनामे का अभाव भी तलाक की प्रवृत्ति को बढ़ावा दे रहा है। राष्ट्रीय महिला आयोग ने मुसलमान स्त्रियों से संबंधित अपनी रिपोर्ट 'वॉयस ऑफ द वॉयस लैस' में मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड से यह मांग की थी कि एक आदर्श निकाहनामा तैयार किया जाए। आज हालात यह है कि लोग अपनी मर्जी से निकाहनामा तैयार करा लेते हैं और इसमें प्रायः स्त्रियों की स्थिति को अनदेखा कर दिया जाता है। स्टैंडर्ड निकाहनामे के अभाव में तलाक भी वे अपने बनाए नियमानुसार ही देते हैं। एक ही समय में तीन बार तलाक कहकर तलाक की प्रक्रिया पूर्ण मान ली जाती है। न तो पत्नी को गुजारा भत्ता ही दिया जाता है और न ही मेहर की रकम। आज भी 'मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड' तलाक के मामले में किसी भी निर्णय से दूर है। इसी के चलते 'मुस्लिम महिला पर्सनल लॉ बोर्ड' का गठन हुआ, जिसमें अलीगढ़, लखनऊ, हैदराबाद आदि जगहों पर काम करते हुए, पारिवारिक मसलों के हल ढूंढते हुए, तीन तलाकों को नाजायज ठहराकर उसे कानूनी प्रक्रिया में लाने की पहल की। हाल ही में आया 'शिया मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड' (नवम्बर–2006) का उचित निकाहनामा इस पहल का ठोस कदम है। इस निकाहनामा में – एक ही बार में तीन बार तलाक कहने को एक ही तलाक मानना, स्त्री को गुजारा भत्ता व मेहर राशि की अदायगी व तलाक का अधिकार स्त्रियों को भी देना–महत्वपूर्ण है।

मेवात समाज में प्रचलित 'मेव कस्टमरी लॉ' भी एक ऐसा कानून है जो वहां की नारी समस्याओं को बढ़ावा देता है। उपन्यासकार ने मेवात पंचायत के इस कानून पर भी

तीखे सवाल उठाए हैं। मेव कस्टमरी लॉ के अनुसार औरतों का पुश्तैनी जमीन–जायदाद में कोई हक नहीं होता है। न पिता की संपत्ति में पुत्री का हक होता है और न ही पति की संपत्ति में पत्नी का। पुश्तैनी जायदाद में केवल पुरुषों का हक होता है। मेव कस्टमरी लॉ का परिचय उपन्यास का पात्र युनुस इस प्रकार देता है "मुस्लिम कानून के मुताबिक बेशक एक बेवा अपना मरहूम शौहर की जादाद में हक हासिल है पर, हमारा या मेवात में मेवन के रिवाजे–आम के मुताबिक, बेटी ए अपना बाप की जादाद में कोई हक हासिल ना है। रही बात एक बेवा की तो ऊ अपना शौहर की जादाद को इस्तेमाल तो कर सके है पर वाहे न तो ऊ बेच सके और न अपने नाम करा सके।"[40] नसीब खां की इकलौती पुत्री रहीशन जब अपने पिता की जायदाद में से अपना हक मांगती है तो उसके पिता के तैयार होने के बावजूद चाचा–ताऊ व घर की स्त्रियां भी इसका विरोध करती हैं। उसे अपने पिता की संपत्ति में से कोई अधिकार नहीं मिलता है। शकीला की भी यही स्थिति होती है। दीन मोहम्मद की मृत्यु के बाद शकीला जब पुश्तैनी जायदाद में से अपना हक मांगती है तो वह पूरी हवेली की निगाह में खलनायिका बन जाती है। उसे पुरुषों का विरोध तो सहना पड़ता ही है कुछ स्त्रियों का विरोध भी वह सहन करती है, जो अभी रूढ़बद्ध संस्कारों से ग्रसित हैं। अंत–अंत तक संघर्ष करने के बावजूद भी न तो उसे पुश्तैनी जमीन से ही हक मिलता है और न ही अपनी पुत्रियों के लिए भविष्य का आधार। दादी जैतूनी जो शकीला को पुश्तैनी जमीन से हक दिलवाने के संघर्ष में उसके साथ होती है वह भी थक–हारकर यही कहती है "एक बात बता आखिर या दुनिया में हमारो है कहा? पीहर में सब भाई–भतीजा को है और या ससुराड में खसम को और बाकी औलाद को?"[41]

मेवात के अलावा बाकी सभी जगह पर मुस्लिम कानूनों में विधवा व पुत्री को क्रमशः अपने पिता व पति की संपत्ति में अधिकार है लेकिन मेव कस्टमरी लॉ केवल मेवात पंचायत का ही एक ऐसा कानून है, जिसे स्त्री को पितृसत्तात्मक समाज में और जकड़ दिया जाता है। विधवा के अगर कोई पुत्र नहीं है तो उसका हाल धोबी के कुत्ते से भी बदतर होता है। स्त्री अगर अपने अधिकार के लिए संघर्ष भी करती है तो उसका संघर्ष केवल पुरुषों से ही नहीं है बल्कि उन नासमझ व रूढ़ संस्कारों से ग्रसित महिलाओं से भी है जो पुरुष सामंती व्यवस्था की जकड़न को नहीं समझ पा रही हैं।

स्त्री समस्या के संदर्भ में स्त्री शिक्षा भी एक महत्वपूर्ण व अहम मुद्दा है। भारतीय गाँवों में आज भी स्त्री शिक्षा को उतनी अहमियत नहीं दी जाती, जितनी पुरुष शिक्षा

को। लड़कियां अधिक से अधिक प्राइमरी तक पढ़ाई करके स्कूल छोड़ देती हैं। अगर लड़की आगे पढ़ना चाहे तो घरवाले 'लड़की तो पराई अमानत है' समझकर उसकी पढ़ाई छुड़वा देते हैं। एक तो मेवात में वैसे ही साक्षरता प्रतिशत बहुत कम है, उसमें भी स्त्री साक्षरता न के बराबर है। लड़कियों पर उनके अपने ही घरवालों, निकट संबंधियों का दबाव रहता है। मैना के पढ़ाई में बहुत होशियार होने के बावजूद भी उसकी ससुराल वाले उसकी पढ़ाई छुड़वा देते हैं तथा जल्दी से जल्दी उसका गौना इसलिए करना चाहते हैं कि कहीं पढ़ाई के बाद मैना ससुराल जाने से मना न कर दे। मैना दसवीं पास कर लेने के बाद ससुराल जाती है, लेकिन उसका पति मैना के दसवीं पास करने से अपने आपको हीन समझता है। उसका यह हीनताबोध मैना पर गलत आचरण का आरोप लगाकर उसकी पिटाई करके घर से बाहर निकालने में प्रकट होता है।

स्त्री शिक्षा के हतोत्साह का दूसरा उदाहरण मुमताज का है। मुमताज बारहवीं में प्रथम श्रेणी से पास होती है, लेकिन उसकी इस उपलब्धि पर हवेली के मर्द खुश नहीं होते, जबकि उसका भाई मुबारक अली केवल पास भर होता है वो भी कई बार के प्रयास के बाद तो हवेली में खुशी की लहर दौड़ जाती है। शकीला जब गांव की लड़कियों को पढ़ाती है तो उसका भी विरोध होता है।

स्त्रियों की शिक्षा हमारे समाज में नवजागरण से लेकर आज तक सांस्कृतिक अस्मिता के विवाद में केंद्रीय स्थान पर रही है। एक स्त्री को पढ़ाने से पूरा परिवार पढ़ाई से जुड़ता है। यह समझ आज भी बनी हुई है। यह सही है कि जो पढ़ी–लिखी लड़कियां हैं वे पुरुष समुदाय के लिए खतरे से खाली नहीं होती हैं। वे सवाल करने का माद्दा रखती हैं। शकीला इसी की ओर इशारा करती हुई मुमताज से कहती है "इन्हें लगता है कि हमारी हर बात इन्हें ललकारती है। हमारे हर लफ्ज से इन्हें डर लगता है। देखा नहीं बात–बात पर हवेली के मर्द किस तरह तिलमिला जाते हैं।"[42]

ज्ञान मुक्ति के द्वार खोलता है, जिसके कारण सामंती समाज के पुरुष स्त्री को शिक्षा से दूर रखने के ही पक्ष में हैं। यही कारण है कि आज भी भारतीय गांव में स्त्री शिक्षा के प्रति इतनी रुचि नहीं दिखाई जाती। स्त्रियों को अधिक से अधिक दसवीं या बारहवीं तक शिक्षा दिलवाकर घर बिठा लिया जाता है क्योंकि वे मानते हैं 'आखिर इन्हें तो घर का ही काम करना है, कौन सी नौकरी करनी है।' केवल नौकरी पाना ही शिक्षा का ध्येय नहीं होता

है, बल्कि मानव का सर्वांगीण विकास भी शिक्षा से ही संभव है। शिक्षा ही वह साधन है जो सामाजिक जीवन में स्त्रियों को अपना अधिकार दिलवा सकती है "लिंग भेदीय अवस्था से स्त्री मुक्ति की पहली सीढ़ी है स्त्री शिक्षा।"[43]

मेवात समाज के बहाने उपन्यासकार ने भारतीय समाज की उस मानसिकता को भी पकड़ा है जिसमें पुत्र जन्म को लेकर तो खुशियां मनाई जाती हैं और पुत्री का जन्म एक श्राप के रूप में लिया जाता है। पुत्र प्राप्ति के लिए लोग क्या–क्या हथकंडे नहीं अपनाते। शकीला के लड़की होने पर दादी जैतूनी कहती है "एक कमी रह गई असगरी के या छोरी की जगह छोरो सो हो जातो"[44] अगर लड़की होने पर परिवार वालों को कोई आपत्ति नहीं है तो समाज में उसको हीन दृष्टि से देखा जाता है। बत्तो को पुत्र न होने की सारी पीड़ा इन शब्दों में बया होती है " या बीरबाणी की जात की बिना सपूत जने कोई कदर ही ना है।"[45]

यहां यह संकेत करना भी आवश्यक है कि पुत्र–पुत्रियों की इस भेदभावपूर्ण मानसिकता के कारण ही गर्भ में लिंग परीक्षण करके मादा भ्रूण की हत्या कर दी जाती है, जिसके कारण दिन--प्रतिदिन लिंग अनुपात में गिरावट आती जा रही है। भारतीय समाज में नारी का शोषण केवल पुरुष ही नहीं करते हैं, बल्कि नारी शोषण में पुरुषों का साथ भारतीय धर्मशास्त्र भी देता है। सभी धर्मों के धार्मिक ग्रंथ नारी के बारे में एक स्वर में यही कहते हैं कि नारी का एकमात्र धर्म पुरुष की सेवा करना है। उपन्यासकार ऋग्वेद, कुरान आदि धार्मिक ग्रंथों से उदाहरण देते हुए अपनी इस बात की पुष्टि करता है। कुरान की कुछ स्त्री विरोधी पंक्तियां इस प्रकार हैं जो उपन्यासकार उपन्यास में लिखता है–

'पुरुष स्त्रियों के स्वामी हैं। जो नेक स्त्रियां होती हैं,
वे आज्ञाकारी और अपने रहस्यों की रक्षा
करने वाली होती हैं। जिन स्त्रियों से विद्रोही होने
का भय हो– उन्हें समझाओ, उन्हें अपने बिस्तरों
से दूर रखो और उन्हें कुछ सजा दो।"[46]

कुरान की तरह ही उपन्यासकार अथर्ववेद का भी एक उदाहरण देता है। जो निम्न है –

'यथा खरोमघवंश चारूरेषप्रियोमृगाणां सुषदा बभूव।
एवा भगस्य जुष्ट मेयस्तू नारी, संप्रिया पत्याऽविराधियंति।।

(जिस तरह वन्य जीवों तक को शांति वातावरण प्रिय होता है, उसी तरह परिवार को सुखमय बनाने के लिए स्त्री को चाहिए कि वह पति से विरोध या कलह न करे, अपितु उसके अनुकूल रहकर उसकी प्रियता प्राप्त कर अपने ऐश्वर्य की वृद्धि करे)'[47]

हमारे समाज में प्राचीन काल से ही पितृसत्तात्मक व्यवस्था रही है, जिसके कारण स्त्रियां प्रारंभ से ही समाज में उपेक्षित व शोषित रही हैं। उनका धर्म केवल घर–परिवार में रहकर पति की सेवा करना ही माना गया है। जिसकी गवाही हमारे धर्म ग्रंथ देते हैं, जिनमें स्त्री संबंधी आदेशों–निर्देशों की भरमार है। कुरान व अर्थवेद से ऐसे उदाहरण ऊपर दिए जा चुके हैं, जिनमें स्त्रियों को पति के अनुकूल रहने का निर्देश दिया गया है। कुछ ऐसी ही शरीयत संबंधी पुस्तकें भी हैं जो शुद्ध रूप से नारी उपदेशों के लिए ही लिखी गई हैं। 'बहिश्ते ज़ेवर' एवं 'दस्तरुल मुत्तकी फ़ी अहकामिन्नबिट्टिय' ऐसी ही पुस्तकें हैं। बहिश्ते ज़ेवर का परिचय कुछ इस प्रकार है– ''हकीमुलउम्मत हजरत मौलाना अशरफ अली थानवी रह. द्वारा रचित असली और पूरी किताब, जिसे औरतों और बच्चियों के लिए इस्लामी शरियत का 'इनसाइक्लोपीडिया' कहा जाए तो बड़ी बात नहीं होगी।''[48] इस प्रकार उपन्यासकार धर्म की आड़ में रचे गए स्त्री विरोधी प्रपंचों की भी अच्छी खबर लेता है। उपन्यासकार सभी धर्मों की धार्मिक पुस्तकों से नारी विरोधी उक्तियों का उल्लेख इसलिए भी करते है ताकि पता चल सके कि नारी संबंधी विचार सभी धर्मों में एक समान हैं।

अगर गहराई से विचार किया जाए तो पता चलता है कि इन धर्म ग्रंथों की स्त्री अस्तित्व विरोधी–नीति–निर्धारण पद्धति में पुरुष वर्चस्वता की संकल्पना ही अंतर्निहित है। कहीं संकेतों में तो कहीं–कहीं स्पष्टतः शब्दार्थ में। कुल मिलाकर इन धर्म ग्रंथों ने पुरुषों के हाथ में अकूत सत्ता एवं शक्तियां दे रखी हैं और स्त्रियों को इनकी दया पर निर्भर रहने के लिए छोड़ दिया है। अगर स्त्रियां उस व्यवस्था को चुनौती देती हैं तो फिर अपना जीवन ख्वार करती हैं। परिणामस्वरूप स्त्रियां अपना जीवन ख्वार करने की बजाय अपने आपको इन धर्म–ग्रंथों के आदेश–निर्देशों के अनुसार ढ़ालने में ही अपना कल्याण समझती हैं। जैनब का पति जो पहले जैनब से नाखुश रहता था अब उससे इसलिए खुश रहता है कि अब जैनब ने अपने आपको 'बहिश्ते ज़ेवर' के निर्देशों के अनुसार ढ़ाल लिया है। अगर जैनब

अपने–आपको 'बहिश्ते ज़ेवर' के निर्देशों के अनुसार नहीं ढ़ालती तो शायद उसका हश्र भी शगुफ्ता की तरह तलाक में ही परिणत होता। मुमताज को भी शादी में विदा के समय शकीला इसीलिए 'बहिश्ते ज़ेवर' भेंट करती है ताकि वह भी अपने आपको उसके निर्देशों के अनुसार ढाल कर जिन्दगी सुखी बना सके। इसके अलावा कोई दूसरा चारा उनके पास नहीं है।

इस प्रकार नारी शोषण के लिए केवल पितृसत्तात्मक समाज ही नहीं बल्कि उस समाज को प्राप्त वह ताकत भी है जो धर्म–ग्रंथों ने उसको दी है।

(iii) मेवात में सामासिक संस्कृति की टूटती कड़ियाँ और 'बाबल तेरा देस में'

मेवात की हिन्दू–मुस्लिम एकता – जो सामासिक संस्कृति के रूप में पूरे देश के सामने मिशाल के तौर पर रखी जाती है – उसमें धीरे–धीरे कमी होती जा रही है। जहाँ अतीत में यहाँ किसी भी तरह का जातिगत या साम्प्रदायिक विद्वेष का वातावरण नहीं रहा वहीं वर्तमान कुछ कड़वाहट लिए हुए है। जब से देश में मंदिर–मस्जिद की राजनीति शुरू हुई है, तब से मेवात में आए दिन किसी न किसी बहाने मेव और हिन्दू समुदाय एक दूसरे पर कुछ न कुछ आरोप प्रत्यारोप लगाते रहते हैं।

अयोध्या में बाबरी मस्जिद ध्वंस के बाद मेवत के साथ–साथ जयपुर सहित राजस्थान के कई शहरों में साम्प्रदायिक दंगे हुए थे। 'काला पहाड़' में बाबरी विध्वंस के बाद मेवात में होने वाली साम्प्रदायिक हिंसा का जीवंत रूप विद्यमान है। जिस प्रकार 6 दिसम्बर की घटना ने मेवात में व्यापक साम्प्रदायिक दंगों को जन्म दिया, उसी प्रकार सन् 2002 के गुजरात दंगों व नरसंहार का भी मेवात सहित राजस्थान के सीमान्त जिलों में कई जगह आगजनी व तोड़फोड़ की घटनाएं सुनने को मिली। राज्य सरकार को आसींद, ब्यावर और गंगापुर सिटी सहित कई कस्बों में साम्प्रदायिक तनाव के चलते कर्फ्यू भी लगाना पड़ा। "राजस्थान के हाड़ौती अचंल के झालावाड़ जिले में अकलेरा व उसके इर्द–गिर्द के गांव में मुस्लिम समुदाय के घरों पर हिन्दू कट्टरपंथी संगठन बजरंग दल द्वारा आक्रमण किया गया (सितम्बर 17, 18, 19, 2003) तथा उनकी सम्पत्ति को या तो लूट लिया गया अथवा नष्ट कर दिया गया।"[49] इसी प्रकार संत चूहड़सिद्ध की मजार पर भी विवाद हुआ। इस मजार पर बकरों की बलि देने की पुरानी परम्परा रही है, लेकिल सन् 2005 में 'शिव सैनिकों' ने इसका

विरोध किया और मामले को साम्प्रदायिक रंग दे दिया। हालांकि स्थानीय गांव वालों ने बलि का स्थान मजार से थोड़ी दूर करके मामले को सुलझाया।

संत लालदास के स्थान को भी हिन्दू कट्टरपंथियों ने कई बार साम्प्रदायिक रूप देने की कोशिश की। संत लालदास एक मेव संत थे। संत लालदास की समाधि नौगाँवा के शेरपुर गांव में है। विभाजन के काफी दिनों बाद तक शेरपुर के इस मन्दिर बनाम मस्जिद में नमाज पढ़ी जाती थी। इधर यहां पांचों वक्त की नमाज पढ़ी जाती और उधर लालदासी उसकी समाधि पर पूजा–अर्चना करते। "धीरे–धीरे लालदासियों की संख्या (जिसमें हिन्दू अनुयायियों की बाहुल्यता थी) में तेजी से वृद्धि होने लगी। फलस्वरूप नमाजियों की संख्या कम होती चली गई और अन्ततः एक दिन इस मस्जिद में नमाज पढ़नी बन्द हो गई। यहां तक कि कुछ समय बाद मेवों ने इसके परिसर में आना ही बन्द कर दिया।"[50] कुछ समय बाद फिर नमाज पढ़नी शुरू हुई लेकिन हिन्दू कट्टरपंथियों ने उन्हें रोकने का प्रयास किया जिससे साम्प्रदायिक दंगे हुए। जून 2004 में मेवात में एक शोभायात्रा निकाली गई, जो सैकड़ों गाँवों से होकर गुजरी और अन्ततः "शेरगढ़ में संत लालदास की मजार पर हिन्दू बनियों ने साम्प्रदायिक संगठनों की मदद से ट्रस्ट बनाकर कब्जा कर लिया।"[51] तब से लेकर आज तक इस मन्दिर की देखभाल यह ट्रस्ट करता आ रहा है।

जो सम्प्रदायिक शक्तियां अयोध्या से और दिल्ली से सारा खेल रचा रही है, वे सर्वथा सुरक्षित है। नगीना में या मेवात में जवाबी खेल रचाने वाले लोग भी सुरक्षित हैं। मारे जाते हैं वे लोग, जिन्होने अपनी छोटी सी दुनिया देखी है और जिन्होंने मेवात की सामासिक संस्कृति को बचाने के लिए कभी भी अपने जान–माल की परवाह नहीं की।

साम्प्रदायिक शक्तियां केवल साम्प्रदायिक दंगे कराकर ही मेवात के इस संश्लिष्ट व सुघटित समाज को नहीं तोड़ रही हैं बल्कि वहां की स्थानीय राजनीति को भी साम्प्रदायिक जामा पहनाने की कोशिश कर रही हैं। 'बाबल तेरा देस में' का पंचायती चुनाव इसका उदाहरण है। शकीला पहली बार पंचायती चुनाव जीत जाती है लेकिन दूसरी बार चुनाव हार जाती है क्योंकि "इन इलेक्सन में बोट आदमी और आदमी के काम पे ना गिरी हैं बल्कि हिन्दू और मुसलमान का नाम पे गिरी है।"[52]

भोलेभाले लोगों को राजनीति अपने शुद्र स्वार्थों के लिए किस तरह साम्प्रदायिक बनाती है इसका उल्लेख उपन्यास में रामचन्द्र इस प्रकार करता है "तमन्ने पतो है चिमरवाड़ा

में पूरी–पूरी रात बैठके उनका दिमाग में ई बात भरी गई ही के इन मुसलमान सू हमारो कैसो भाईचारो। हम चाहे आपस में लड़े या भिड़ें... एक दूसरा का हाथ को खाएँ या न खाएँ, आखिर है तो हम सब हिन्दू।"[53] साम्प्रदायिक रंग में रंगे स्थानीय पंचायत के चुनावों का ऐसा ही दृश्य 'काला पहाड़' में है जहाँ बाबू खाँ हाजी अशरफ का समर्थन केवल मजहब की समानता के चलते ही करता है।

राजनीति के अलावा समय–समय पर पुलिस एवं प्रशासन का भेदभावपूर्ण रवैया भी मेवात समाज की सामासिक संस्कृति को तोड़ने का काम कर रहा है। पुलिस प्रशासन में मेवों की संख्या नगण्य है पुलिस में ज्यादातर लोग हिन्दू ही हैं। ये लोग मेवों के प्रति पूर्वाग्रह से युक्त देखे जाते हैं। बहुत सी आपसी घटनाओं में पुलिस ने केवल मेवों को ही गिरफ्तार किया और हिन्दुओं को छोड़े रखा। नौगाँवा के रसगण व तिजारा गांवों के जंगलों में गौकशी काण्ड की घटनाएँ इसी तरह की रही। इस घटना में हिन्दू–मेव दोनों सम्प्रदायों के लोग शामिल थे, लेकिन पुलिस ने सिर्फ मेवों को ही गिरफ्तार किया। बाद में मेवों के आक्रोशित होने पर ही हिन्दू अपराधियों को पकड़ा गया। इसके अलावा राजाराम भादू (सं. दिशाबोध, जयपुर) ने अपने एक लेख में मेवात में साम्प्रदायिक तनाव एवं द्वन्द्व के कुछ प्रसंगों का विवरण दिया है जो संक्षेप में इस प्रकार है –

1. रामगढ़ के तलावणी गांव में 1 मई 2004 को एक जट सिख की गाय एक मेव के खेत में मृत पाई गयी। गांव के साधु ने मेव पर गौहत्या का आरोप लगाया, लेकिन बाद में साधु झूठा निकला।

2. रामगढ़ के खोहेड़ा (करमाली) गांव में एक जाटव की लड़की एक मेव युवक के साथ भाग गयी। इस घटना को लेकर हिन्दू कट्टरपंथियों ने दलित समुदाय को भड़काने की कोशिश की लेकिन वे कामयाब नहीं हो सके। (नवम्बर 2003) 'बाबल तेरा देस में' में भी जब फत्तू, पारो को लेकर आता है तो हिन्दू कट्टरपंथियों के डर से नसीब खां कहता है "अन्यायी, तू या गांवों में फिसाद करवायेगो ?"[54] लेकिन "इन बातन् सू कोई फरक ना मारे... बस, आपस में दिल मिलना चहिएँ और फिर बिचारा को घर बसगो यही कौण–सो कम है।"[55] सोचकर गांव वाले बात को वहीं खत्म कर देते हैं।

3. शेरगढ़ में सन्त लालदास की मजार पर हिन्दू बनियों ने साम्प्रदायिक संगठनों की मदद से ट्रस्ट बनाकर कब्जा कर लिया, जबकि संत लालदास का जन्म मेव परिवार में हुआ था।

4. खैरथल (अलवर) के चोखी पहाड़ी गांव में गुर्जर व मेवों के बीच झगड़ा हुआ। इसमें पुलिस ने सिर्फ मेवों को गिरफ्तार किया और पक्षपातपूर्ण रवैया दर्शाया। (जनवरी 2004)

5. रामगढ़ के नीमचपुर गांव में इजरायल मेव ने जब एक जाटव को खेत से चने की चोरी करते पकड़ लिया तो उसने उलटा मेव पर जाति सूचक अपशब्द कहने का मुकदमा लगा दिया। इसमें जाटव को कट्टरपंथियों ने शह दी। (अक्टूबर 2003)

6. अक्टूबर 2004 में ककराली गांव में हुए नकली सोने की ईंट बिक्री काण्ड में पुलिस ने मेवों के खिलाफ कार्यवाही की, जबकि इसमें लिप्त हिन्दू व्यापारी व दलाल को छोड़ दिया। इस पर मेव समुदाय ने विरोध प्रदर्शन किया।

7. जनवरी 2005 में नौगाँव के रसगण गांव व तिजारा के जंगलों में गौकशी काण्ड में पहले सिर्फ मेवों के खिलाफ पुलिस कार्यवाही हुई। मेवों के आन्दोलित होने पर ही हिन्दू अपराधियों को पकड़ा गया।"[56]

उपर्युक्त तथ्यों एवं घटनाओं से स्पष्ट होता है कि प्रशासन भी बहुत हद तक मेवात के सामासिक एवं सुगंठित समाज को तोड़ने के लिए जिम्मेदार है, जो हर घटना को साम्प्रदायिक रंग में रंगने की कोशिश करता है।

स्वतंत्र भारत की शिक्षा पद्धति – जो अधिक राजनीतिक होती गई है – ने भी आधुनिक पीढ़ी की मानसिकता को अधिक साम्प्रदायिक बनाया है। गांवों में वैज्ञानिक शिक्षा की बजाय मजहबी शिक्षा के प्रसार के लिए मदरसों की स्थापना करना ज्यादा महत्वपूर्ण माना जाने लगा। 'काला पहाड़' का बाबू खां अपने पिता सलेमी से 'मदरसा–तालीम–उल–कुरान' के लिए चन्दा मांगते हुए कहता है "कल जुम्मा महजत में देवबन्द सू आई जमात के आगेई फैसला हुओ है के मेवात का मुसलमान लू कुरान की जादा सू जादा तालीम मिलनी चाहिए... याही मारे या मदरसा लू चंदा इकट्ठो करणो पड़ रो है।"[57]

स्वतंत्रता की कोख से पैदा एवं आधुनिक शिक्षा पद्धति में पली–बढ़ी आधुनिक पीढ़ी अपनी पुरानी पीढ़ी की अपेक्षा साम्प्रदायिक मामले में ज्यादा संवेदनशील है। आधुनिक पीढ़ी धीरे–धीरे अपने परम्परागत रीति–रिवाज भी त्यागती जा रही है। काला पहाड़ का बाबू खां जहां पहली बार अपने ही साले की लड़की को अपने लड़के के लिए बिहा कर लाता है। गांव में नौसी भी पहली बार पूरी मुस्लिम परम्परा से बुर्के में आती है। इतना ही नहीं

बल्कि विवाह में होने वाली 'चाक पूजा' जैसी रस्मों को दरकिनार करते हुए बाबू खाँ कहता है "मेवन में अब कौन पुजवाए है चाक वाक... पांच सात घड़िया–मटका वैसेई लिअइयो... ओर फिर ये सब तो हिंदू का चोचला है, हमारा हदीस में कहान् लिक्खी है के मुसलमान का बालकान् का बिहा में चाक पूजवायो जाय।"[58]

मेवात में पहले एक दूसरे के पर्व त्योहारों में दोनों ही समुदाय के लोग हिस्सा लेते थे। वह भी धीरे–धीरे खत्म होता जा रहा है क्योंकि त्योहारों का परम्परागत स्वरूप बदल रहा है। मेवात में ताजिया निकालने की पुरानी परम्परा है, जिसके बारे में अलीगढ़ से पढ़कर आया आधुनिक पीढ़ी का प्रतिनिधि पात्र युनुस कहता है "बूढ़ी माँ ये हब्दा–वब्दा बन्द होगा। अरे, हमारा या मेवात में तो ताजियान् में ऐसी खुसी मनाई जावे हे जैसे ई कोई ईद या बकरीद होए।"[59] बाद में युनुस अलीगढ़ के सैयदों की नकल पर मेवात में भी ताजिया मनाने की कोशिश करता है। पहले तो इसके लिए पुरानी पीढ़ी तैयार ही नहीं होती परन्तु "तसबीह फेरणा सू ही आदमी मुसलमान ना बण जावे है... और भी बहोत कुछ करनो पड़े है सच्चो मुसलमान बणना कू"[60] जैसी बातें कहकर युनुस पुरानी पीढ़ी को भी इसके लिए तैयार कर लेता है। लेकिन इसका परिणाम कुछ नहीं निकल पाता है न तो ताजिया सैयदों की तरह ही मन पाता है और न अपने परम्परागत रूप से ही। पूरे गांव में युनुस को जो शर्मिन्दगी उठानी पड़ती है वह अलग, दादी जैतून भी 'देसी गधी पूरबी चाल' कहकर उसका मजाक उड़ाने से नहीं चूकती है।

मेवात के हिन्दू–मेव (मुस्लिम) आपस में एक दूसरे के सांस्कृतिक एवं धार्मिक प्रतीकों का सम्मान करते आए हैं। परन्तु मेवात की आधुनिक पीढ़ी इन प्रतीकों के प्रति उदासीनता एवं उपेक्षा का भाव लिए हुए है। मेवात में दादा खानू की मजार पर 'गलेपी चढ़ाने की पुरानी परम्परा रही है यह परम्परा धीरे–धीरे अब खत्म होती जा रही है। अब वहां केवल मेव ही गलेपी चढ़ाते हैं। 'सेनक' लगाने की प्रथा भी खत्म होती जा रही है। सन्त लाल दास के मेले में सोनदेई का मन इसलिए खराब हो जाता है कि वहाँ उसे मेव का लड़का प्रसाद दे रहा था और मन्दिर के नाम पे वहाँ घण्टा–घड़ियाल नहीं था।

पारम्परिक रूप से मेवात में दादा खानू, पचपीर, सन्त लालदास आदि देवताओं को दोनों (हिन्दू एवं मेव) ही पूजते आए हैं लेकिन आधुनिक पीढ़ी में बढ़ते धार्मिक कट्टरतावाद के कारण वे हिन्दू एवं मेवों के बनकर रह गए हैं। इसी प्रकार अलवर में

भगवान जगन्नाथ जी के मेले में जहाँ हिन्दुओं के साथ साथ मेव लोग भी टामक, अलगोझा गाते–बजाते हुए हिस्सा लेते थे, इन्हें भी अब नहीं देखा जाता है। मेवों के नाम जो शंकर, मंगली, शेरसिंह, जयसिंह, रणधीर थे वे दूसरी पीढ़ी में रशीद, छुट्टन, अयूब खां, भूरे खां, नवाज खां होकर अब तीसरी पीढ़ी में इस्माइल खां, इजराइल खां, सद्दाम हुसैन, इस्लाम खां, शफीकुर्रहमान बनकर पूर्णरूपेण मुस्लिम हो गए हैं। "पहले मेवों में शादी मिश्रजी और निकाह मौलवी कराते रहे हैं किन्तु अब दिन में निकाह मौलवी साहब ही कराते हैं। पहले मेवों की शादी की रस्में रात्रि में पूरी की जाती थीं, किन्तु अब धार्मिक प्रभाव के कारण मेवों में शादी दिन में ही होती है और शादी में मिश्रजी की भूमिका खत्म हो गई है। ये सांझी संस्कृति के टूटते बंधन है।[61]

आधुनिक शिक्षा पद्धति ने भी आधुनिक पीढ़ी को धार्मिक संकीर्णता और जड़ता में जकड़ा है। कुछ ऐसी शिक्षण संस्थाऐं हैं जो बचपन से ही बालकों के मन में संकीर्णता भर देती है। उदाहरण के लिए इस्लामी मदरसों एवं राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के सरस्वती शिशु मन्दिरों को लिया जा सकता है। शिक्षा के शुद्धिकरण की मुहिम में एक संस्था 'बरूआ रहमानी एजुकेशन सोसाइटी' (बी.आर.ई.एस) भी है। बी.आर.ई.एस. का पाठ्यक्रम लगभग पूरी तरह साम्प्रदायिक है जो सरकारी मदरसा व्यवस्था के धर्म निरपेक्ष आदर्शों का उल्लंघन करता है। बी.आर.ई.एस. के अध्यक्ष शेखऐनुल बारी कहते हैं "सरकारी मदरसों में हमारे बच्चों की इस्लाम के प्रति जागरूकता कुंद हो जाती है।"[62] इस प्रकार मेवात की आधुनिक पीढ़ी ज्यादा 'हिसाब–किताबी' एवं साझा संस्कृति के हिमायती माता–पिताओं की अपेक्षा ज्यादा कट्टरतावादी होती जा रही है जो मेवात के सुघटित समाज के लिए अहम् समस्या है।

(iv) मेव समुदाय और उनकी अस्मिता का प्रश्न –

अस्मिता सम्बन्धी समस्या मेवात क्षेत्र की नहीं है, बल्कि मेवात में रहने वाले मेव समुदाय की है, जिनके कारण इस क्षेत्र का नाम मेवात पड़ा है। समस्या यह है कि मेव समुदाय को किस सम्प्रदाय में शामिल किया जाए – हिन्दू सम्प्रदाय में या मुस्लिम सम्प्रदाय में। हालांकि मेवों को मुस्लिम सम्प्रदाय में ही शामिल किया गया है तथा उन्हें इस्लाम धर्मानुयायी ही माना जाता है। लेकिन वे मुस्लिम होने के बावजूद भी मुस्लिम नहीं 'मुस्लिम–मेव' हैं अर्थात् अल्पसंख्यकों में भी अल्पसंख्यक।

चूंकि मेव समुदाय धर्मान्तरित करने वाला अन्तिम समुदाय था इसलिए आज भी इनके अधिकांश तीज–त्योहार गैर इस्लामिक बने हुए हैं। गैर–इस्लामिक रीति–रिवाज व तीज–त्योहार इन्हें संस्थाबद्ध मुसलमानों से अलगाने वाले सबसे बड़े तत्व हैं। इसके अपने कुछ लाभ भी है तो कुछ हानियां भी जो मेवों को उठानी पड़ती है। लाभ यह है कि हिन्दुओं से इनकी निकटता बढ़ती है और जब भी सामासिक संस्कृति की बात होती है तो मेवों को एक मिशाल के तौर पर रखा जाता है। हानि यह है कि, मुसलमानों से इनकी दूरियां बढ़ जाती हैं। इनके रिश्ते हिन्दुओं में होने का तो खैर प्रश्न ही नहीं उठता है, उधर अन्य मुसलमान भी इनसे कन्नी काटते हैं। 'काला पहाड़' में प्रो. उस्मानी कहता है "आज भी हम यू.पी. वाले इनसे आसानी से रिश्ता नहीं जोड़ते।"[63] हैदराबाद से मेवात समाज में आई शकीला भी अपने यहां के मुसलमानों से इनको भिन्न पाती हैं और कहती है "पता नहीं अपने आपको मुसलमान कहने वाले ये लोग अभी भी कौन सी दुनिया में रह रहे हैं।"[64]

देश में जब से धर्म के नाम पर राजनीति होने लगी है। मन्दिर–मस्जिद जैसे साम्प्रदायिक मुद्दों का जो जलजला हमारे देश में आया है, उसमें सबसे ज्यादा मुसीबत मेव जैसी मध्यवर्गीय जाति (धर्म) को ही पैदा हुई है। वे किधर जाएँ और क्या करें ? इधर हिन्दुओं में उनके प्रति एक दुराग्रह सा पैदा होता चला गया है तो मुस्लिम लोग इन्हें खुलकर गले लगाने से परहेज करते हैं। इसी दुविधापूर्ण स्थिति का नतीजा है कि ये निरन्तर एक हाशिये पर आते चले गए हैं; जिससे इनको पिछड़ेपन का शिकार भी होना पड़ रहा है।

इसी के चलते भारतीय राजनीति भी इनका 'इमोशनल ब्लैकमेल' करती है। हिन्दू जाति का उम्मीदवार उन्हें 'सूर्यवंशी' व 'चन्द्रवंशी' की दुहाई देता है तो मुस्लिम उम्मीदवार उन्हें इस्लाम की दुहाई देता है। इस प्रकार 'मेव–समुदाय' 'दो पाटों के बीच' पिसने वाला समुदाय बना रहा है और अभी तक बना हुआ है।

संदर्भ सूची

1 भारत का संविधान : एक परिचय, डी.डी. बसु, वाधवा एण्ड कम्पनी, नागपुर, जनवरी 2001, पृ. 95

2 वही, पृ. 95

3 काला पहाड़, भगवानदास मोरवाल, पृ. 116

4 बाबल तेरा देस में, भगवानदास मोरवाल, पृ. 118

5 वही, पृ. 81

6 वही, पृ. 223–24

7 वही, पृ.

8 वही, पृ. 226

9 वही, पृ. 224

10 वही, पृ. 224

11 वही, पृ. 225

12 वही, पृ. 305

13 वही, पृ. 236

14 काला पहाड़, भगवानदास मोरवाल, पृ. 20

15 बाबल तेरा देस में, भगवानदास मोरवाल, पृ. 302

16 काला पहाड़, भगवानदास मोरवाल, पृ. 30

17 (सं.) गोपालराय, समीक्षा, अक्टू.–दिस. – 2004

18 बाबल तेरा देस में, भगवानदास मोरवाल, पृ. 321

19 वही, पृ. 339

20 वही, पृ. 343

21 वही, पृ. 132

22 वही, पृ. 134

23 वही, पृ. 141

24 (सं.) गोपाल राय, समीक्षा, अक्टूबर–दिसम्बर, 2004

25 बाबल तेरा देस में, भगवानदास मोरवाल, पृ. 166

26 वही, पृ. 167

27 वही, पृ. 168

28 वही, पृ. 168

29 वही, पृ. 396

30 वही, पृ. 397

31 स्त्रीवादी विमर्श समाज और साहित्य, क्षमा शर्मा, राजकमल प्रकाशन, 2002, पृ0 53

32 बाबल तेरा देस में, भगवानदास मोरवाल, पृ. 397

33 वही, पृ. 316

34 वही, पृ. 319

35 वही, पृ. 332

36 (सं.) नामवर सिंह, आलोचना, अक्टूबर–दिसम्बर 2004–05, पृ. 236

37 बाबल तेरा देस में, भगवानदास मोरवाल, पृ. 305

38 वही, पृ. 371

39 (सं.) सुधीर विद्यार्थी, संदर्भ, पृ. 203

40 बाबल तेरा देस में, भगवानदास मोरवाल, पृ. 456

41 वही, पृ. 459–60

42 वही, पृ. 473

43 स्त्रीवादी साहित्य विमर्श – जगदीश्वर चतुर्वेदी, पृ. 159

44 बाबल तेरा देस में, भगवानदास मोरवाल, 301

45 वही, पृ. 217

46 वही, (बाबल तेरा देस में का प्रारम्भ)

47 वही,

48 बाबल तेरा देस में, भगवानदास मोरवाल, पृ. 382

49 राजाराम भादू : मेवात में साम्प्रदायिकरण : एक सांस्कृतिक अध्ययन, भगवानदास मोरवाल के सौजन्य से प्राप्त, पृ. 2

50 बाबल तेरा देस में, भगवानदास मोरवाल, पृ. 87

51 राजाराम भादू : मेवात में साम्प्रदायिकरण : एक सांस्कृतिक अध्ययन

52. बाबल तेरा देस में, भगवानदास मोरवाल, पृ. 400

53 वही, पृ. 400

54 वही, पृ. 23

55 वही, पृ. 21

56 राजाराम भादू : मेवात में साम्प्रदायिकरण : एक सांस्कृतिक अध्ययन

57 काला पहाड़, भगवानदास मोरवाल, पृ. 304

58 वही, पृ. 358

59 बाबल तेरा देस में, भगवानदास मोरवाल, पृ. 246

60 वही, पृ. 255

61 (सं.) डॉ. मुँशी खाँ, चिराग–ए–मेवात, बखतल की चौकी, अलवर से प्रकाशित, नवम्बर 1999, पृ. 20

62 इंडिया टुडे, 27 जून 2001, 'ऐसा इल्म कहां मिलेगा', पृ. 22

63 काला पहाड़, भगवानदास मोरवाल, पृ. 87

64 बाबल तेरा देस में, भगवानदास मोरवाल, पृ. 265

उपसंहार

कहा जाता है कि रचना पाठकों को जितना विश्वास में लेकर चलती है, वह उतनी ही लोकप्रिय होती है। इस लिहाज से उपन्यास की ख्याति सबसे ऊपर है। पाठक उपन्यास पर अधिक भरोसा इसलिए करता है कि वह अपनी प्रकृति में यथार्थमूलक होता है। उपन्यास की रचना प्रक्रिया के दौरान यथार्थ विकसित होता चलता है।

हिन्दी में उपन्यास साहित्य की लम्बी परम्परा है। लोक जीवन से जुड़े रहना उपन्यास साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता है। आजादी के पूर्व प्रेमचन्द, जयशंकर प्रसाद, पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र', जैनेन्द्र, यशपाल, हजारीप्रसाद द्विवेदी आदि उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में लोक विरचा तो आजादी के बाद फणीश्वरनाथ रेणु, श्रीलाल शुक्ल, भीष्म साहनी, शिवप्रसाद सिंह, अमृतलाल नागर आदि उपन्यासकारों ने। इधर हाल के वर्षों में जिन उपन्सासकारों ने लोक जीवन से जुड़कर उपन्यास लिखा उनमें भगवानदास मोरवाल का नाम महत्त्वपूर्ण है और उनका उपन्यास 'बाबल तेरा देस में' उल्लेखनीय है।

'बाबल तेरा देस में' मेवाती लोक जीवन से सजा सँवरा एक ऐसा उपन्यास है जिसमें मेवाती लोक जीवन के 'शूल–फूल' दोनों एक साथ विद्यमान है। मेवाती लोक जीवन की सामासिक संस्कृति (सुगठित समाज), मेवातियों का अक्खड़ स्वभाव, उनकी अज्ञानता आदि का सजीव व यथार्थ चित्रण यह उपन्यास बहुत ही सटीक ढंग से करता है। रेणु के 'मैला आँचल' को पढ़ते हुए जैसे मेरीगंज का चित्र आँखों के सामने घूमने लगता है, ठीक वैसे ही 'बाबल तेरा देस में' पढ़ते हुए मेवाती समाज और मेवात का चित्र भी आँखों के सामने घूमने लगता है। मेवात के लोग 'पहले घूसो पीछे बात' की अवधारणा को चरितार्थ करते हुए जहाँ अपनी वीरता का परिचय देते हैं तो 'जाट को कहा हिन्दू व मेव को कहा मुसलमान' जैसी कहावत को चरितार्थ करते हुए धर्म निरपेक्षता का उदाहरण भी प्रेम से पेश करते हैं।

मेवात समाज किस्सों, कहानियों, लोकगीतों, लोकविश्वासों तथा लोकवार्ताओं में रमने वाला समाज है। वहाँ के लोग आज भी चौपाल में बैठकर, हुक्के को चारों तरफ घुमाते हुए किस्सों की झड़ी लगाते हुए देखे जा सकते हैं। पर्वों व त्योहारों पर स्त्रियों के मुख से लोकगीतों की फूलझड़ी छूटती हुई सुनी जा सकती है। वहाँ के लोकगीतों की भी अपनी विशिष्टता है। ये लोकगीत सभी पर्वों व त्योहारों के लिए अलग अलग हैं। लोक गीतों में

जहाँ नारी का दर्द है वहीं हँसी–मजाक व शृंगार रस की मस्ती भी है। लोकवार्ताओं में यदि हसन खाँ मेवाती जैसे ऐतिहासिक योद्धा के वीरतापूर्ण किस्से हैं तो चन्द्रावल गूजरी का रोमांस व रासलीला से भरपूर किस्सा भी है।

वैसे तो पूरे भारत में प्रत्येक महीने कोई न कोई त्योहार मनाया जाता है जिसके कारण भारत 'त्योहारों का देश' कहलाता है। मेवात समाज की विशेषता यह है कि यहाँ मनाए जानेवाले त्योहारों को किसी समुदाय के साथ जोड़कर नहीं देखा जा सकता। मेवात समाज के त्योहारों में न केवल सभी समुदाय के लोग शामिल होते हैं बल्कि उनका शामिल होना ज़रूरी भी हो जाता है, क्योंकि 'मीयाँ बाबा' का बकरा जैसी रस्म दोनों समुदायों के सहयोग से ही संभव होती है। इसमें एक बकरा काटने के लिए बिस्मिल्लाह पढ़ता है तो दूसरा मीयाँ बाबा की पूजा करता है। पचपीर पर गलेपी चढ़ाना, मुहर्रम के समय ताजिया निकालना, संत लालदास व जगन्नाथ जी की रथयात्रा आदि ऐसे ही पर्व है जिनमें हिन्दू–मुसलमान सभी समुदाय के लोग बढ़चढ़कर भाग लेते हैं। उपन्यास में अनेक प्रसंगों के माध्यम से इस तथ्य की अभिव्यक्ति होती है कि कुछ पर्व एक दूसरे समुदाय के सहयोग के बिना संभव नहीं हैं।

यह उपन्यास मेवाती लोक जीवन के इस पक्ष को भी गहराई से प्रकट करता है कि वहाँ के देवी–देवता पर किसी धर्म के अनुयायियों का 'लेबल' चस्पाँ नहीं किया जा सकता। वे देवी देवता तो सबके हैं। वहाँ के लोगों की तो यह धारणा है कि 'जाकी लग जाय वही सच्चो देवता'। यही कारण है कि सन्त लालदास, चूहड़सिद्ध महाराज, महाराजा भर्तृहरि, जगन्नाथ जी महाराज, हनुमान जी महाराज, पचपीर, खेड़ा देवत माई आदि ऐसे ही देवी–देवता हैं जिनकी समान श्रद्धा भाव से पूजा दोनों समुदायो में होती है।

मेव समुदाय मुस्लिम धर्म में परिवर्तित होनेवाला अन्तिम समुदाय था। इसी कारण आज भी इस समुदाय के अधिकांश संस्कार हिन्दुओं के बहुत निकट है। विवाह में गोत्र बचाने की प्रथा, चाक–भात पूजा आदि ऐसी ही रस्म हैं जिनका निर्वाह वे लोग आजतक करते आए हैं।

उपन्यासकार ने उपन्यास में वहाँ के संगठित समाज को बहुत विस्तृत ढंग से अनेक प्रसंगों के माध्यम से उभारा है। बाहर से ये लोग चाहे 'पहले घूंसो पीछे बात' वाली कहावत चरितार्थ करते हों लेकिन अन्दर से ये पूरी तरह संगठित व एक दूसरे से घुले–मिले

हैं। एक का दुःख वहाँ एक तक ही सीमित न होकर पूरे समाज का दुःख हो जाता है। इस दुःख के निदान के लिए सभी लोग मिलकर भरसक प्रयास भी करते हैं। चाहे किसी के शादी–विवाह का मामला हो या कोर्ट–कचहरी, पुलिस आदि से जुड़ा मसला।

उपन्यासकार जिस 'कचैड़ी' के इर्द–गिर्द कथानक बुनते हैं उसको हम ग्रामपंचायत का रूप कहें तो कोई गलत नहीं होगा, क्योंकि उपन्यास के पात्रों पर जितनी भी समस्याएँ आती हैं वे सब 'कचैड़ी' के माध्यम से ही सुलझ पाती हैं। 'कचैड़ी' में नसीब खाँ, धनसिंह, चाँदमल, जैसे पुरुष व दादी जैतूनी जैसी स्त्री पात्र भी समस्या का समाधान करने का प्रयास करते हैं। 'कचैड़ी' एक ऐसा स्थान है जहाँ गाँव के लोग आते हैं अपनी अपनी मुसीबतों को बताते हैं और अपना दुःख दर्द बाँटते हैं।

मेवात की धरती, वहाँ का लोक जीवन साधु संतों की बानियों से प्रभावित है। संत लालदास, सूफी कवि भीकजी, संत चरणदास, कवयित्री सहजोबाई, संत सादल्ला, कवि अली बख्श आदि अनेक संतों व कवियों ने अपनी वाणी से इस धरती को पवित्र किया है। यही कारण है कि यहाँ के लोगों की जबान पर इन कवियों की सूक्तियाँ, दोहे, शायरी आदि चढ़े रहते हैं जो बात–बात पर अपनी बात को पुष्ट करने के लिए साथ में बोल दिए जाते हैं। जिससे वहाँ की भाषा में एक सरसता भी मिलती है।

जिस लेखक की सामाजिक हिस्सेदारी जितनी होगी उसका समाज के संबंध में उतना ही प्रामाणिक व व्यापक अनुभव होगा। मोरवाल की पृष्ठभूमि मेवात की है, उससे वे भली भाँति परिचित हैं इसलिए इस उपन्यास में मेवात ज्यादा प्रामाणिक व यथार्थ ढंग से उभरा है। मेवात के प्रत्येक पक्ष के चित्रण में ज्यादा विश्वसनीयता का मौजूद होना मोरवाल का उस समाज से भली भाँति परिचित होने के परिणाम स्वरूप ही है, जो सोने पे सुहागे की तरह है।

यह उपन्यास स्त्री समस्या को गंभीरता एवं जड़ से पकड़ता है। उपन्यासकार के लिए साहित्य व समाज में चलने वाला स्त्री विमर्श महत्त्वपूर्ण नहीं है बल्कि महत्त्वपूर्ण है इस समस्या की जड़ों को पकड़ना। आज स्त्री अपने ही परिवार में असुरक्षित है, उसका संघर्ष बाहरी ताकतों से नहीं बल्कि अपने ही सगे–सम्बन्धियों से है। परिवार में चलते इसी महिला उत्पीड़न के खिलाफ 26 अक्टूबर 2006 ई. को 'घरेलू हिंसा निरोधक कानून' भी बना लेकिन देखना होगा कि इस कानून का लाभ कितना उन उत्पीड़ित महिलाओं को मिलता

है, जो एक तो देहाती हैं, दूसरे अनपढ़ और अशिक्षित। कहीं ऐसा तो नहीं है कि यह कानून भी शहरी एवं शिक्षित महिलाओं तक ही सीमित है।

उपन्यासकार स्त्री को वर्गों और वर्णों में बाँटकर नहीं, बल्कि आम भारतीय नारी विशेषकर ग्रामीण नारी के उत्पीड़न की बात करते हैं। इस उत्पीड़न में केवल पुरुष ही शामिल नहीं है बल्कि भारतीय धर्मशास्त्र भी पुरुषों के साथ खड़े हैं। सभी धर्मों के ग्रंथों में स्त्री विरोधी स्वर विद्यमान हैं, आखिर हो भी क्यों न, वे भी तो पुरुष सत्तात्मक समाज में पुरुषों द्वारा ही लिखे गए हैं।

मुस्लिम समाज की कुछ परम्पराएँ मेव समाज में भी विद्यमान हैं। इन परंपराओं पर उपन्यासकार ने खुलकर बात की है। तलाक की परम्परागत प्रथा, अनुचित निकाहनामा, केवल पुरुषों को ही तलाक का अधिकार होना, आदि ऐसी परम्पराएं हैं जिनकी गणना मुसलिम समाज की स्वस्थ परंपरा में नहीं की जाती। हाल ही में आया शिया मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड (नवम्बर 2006) का निकाहनामा एक 'आदर्श निकाहनामा' पेश करने की कोशिश करता है। उपन्यासकार ने इन सभी तथ्यों पर ध्यान दिया है और अपनी रचना के माध्यम से उन्हें स्वस्थ तरीके से प्रस्तुत किया है।

"बाबल तेरा देस में" उपन्यास की एक खास बात है कि यह कहीं कहीं अपनी विशाल दृष्टि के कारण भारत के किसी भी गाँव का प्रतिनिधित्व करने लगता है तो कहीं–कहीं केवल मेवाती समाज का। मेवाती समाज की अज्ञानता और पिछड़ेपन आदि के कारण वह भारत के किसी भी गाँव का प्रतिनिधित्व कर सकता है। लेकिन 'मेव कस्टमरी लॉ' जैसे कानून केवल भारत के मेवात समाज में ही विद्यमान है जिसके तहत आज भी पैतृक सम्पत्ति में पुत्री का अधिकार नहीं है। मेवात समाज में बाहर से लाकर स्त्रियों की खरीद–फरोख्त को भी उपन्यासकार गहराई से पकड़ता है। स्त्री खरीद फरोख्त के कारणों व खरीदी गई स्त्रियों की हो रही दुर्दशा का मार्मिक चित्रण उपन्यासकार समीना नामक पात्र के माध्यम से करता है।

मेवात समाज की सामासिक परम्परा, वहाँ के सुगठित समाज के साथ–साथ सामासिकता की टूटती कड़ियां व उसके कारणों को भी उपन्यासकार रेखांकित करता है। स्वाधीन भारत की शिक्षा पद्धति, राजनीति में बढ़ती साम्प्रदायिकता आदि को उपन्यासकार गहराई से पकड़ता है। आधुनिक पीढ़ी किस तरह पुरानी पीढ़ी की अपेक्षा ज्यादा संवेदनशील

है, इन सबको उपन्यासकार अपने पात्रों – युनुस, मुबारक आदि के माध्यम से दिखाता है। उपन्यास में मेवात समाज का गतिशील चित्रण है। मेवाती समाज किस तरह करवट ले रहा है, किस तरह उस समाज में साम्प्रदायिकता अपना रंग ला रही है, परम्पराएँ टूट रही हैं, मेल–मिलाप, भाईचारा पहले जैसा नहीं रह गया है, किस तरह अब अपने–अपने का चलन होता जा रहा है, इन सबको उपन्यासकार अपनी सूक्ष्म दृष्टि से पकड़ता है।

भारतीय धार्मिक ग्रंथों की स्त्री–विरोधी उक्तियों या कथनों की भी उपन्यास अच्छी खबर लेता है। हिन्दू धर्म के चाहे रामायण, महाभारत, मनुस्मृति हो, चाहे मुस्लिम धर्म के कुरान, बहिश्ते ज़ेवर, दस्तरूल मुत्तकी फ़ी अहकामिनबिट्टिय सरीखी धार्मिक पुस्तकें सभी में स्त्री विरोधी स्वर विद्यमान हैं। सभी इस मामले में पुरुष का पक्ष लेकर पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री की दासी स्थिति को ही पुष्टि करते हैं। स्त्री भी इसी को अपनी नियति मानकर सहन करती रहती है। उपन्यास में आई 'हवेली' अज्ञान की काल कोठरी के साथ–साथ 'पितृसत्तात्मकता' का भी प्रतीक है जो जर्जर अवस्था में है। एक हल्का सा झोंका उस 'हवेली' को ढ़हाने के लिए काफी है। शकीला के माध्यम से वह झोंका आता भी है लेकिन 'हवेली' लरजकर रह जाती है, ढह नहीं पाती। इसका कारण शायद अभी शकीला (स्त्रियों) में इतनी ताकत नहीं कि वह 'हवेली' को ढहा सके। अभी शकीला को अपनी ताकत और बढ़ाकर मजबूत करनी होगी तथा उपयुक्त मौके की भी तलाश करनी होगी। रूढ़ महिलाओं की मानसिकता को भी बदलकर अपने साथ करने की आवश्यकता है। जड़ीभूत संस्कार बद्धता पर भी हथौड़ा चलाने की जरूरत है।

उपन्यास में मेवाती लोकरंग व लोक जीवन के विविध पक्ष मेवात की अपनी 'बोली–बानी' में है जिससे उपन्यास में सरसता व ज्यादा विश्वसनीयता आ गई है। मेवाती भाषा के सैकड़ों शब्द व्रजभाषा में रचे पचे, इसमें बिखरे पड़े हैं। मेवाती भाषा का 'खरखरापन' पहली बार मोरवाल अपने उपन्यासों में प्रकट करते हैं। पात्रों के संवादों के वाक्य–विन्यास, कहावतों, लोकोक्तियों और दी गई गालियों पर इस खरखरेपन को देखा जा सकता है। बेहिसाब खाँटी किस्म की गालियों से भी उपन्यास ज्यादा रोचक व यथार्थ हुआ है।

अन्त में, "बाबल तेरा देस में" उस 'अकथित की कथा' है जो हिन्दी कथा साहित्य में 'नागर' स्वाद को बेमजा करती हुई मेवात का सम्पूर्ण चित्र हमारे सामने उपस्थित करती है। इसमें मेवाती लोकजीवन के दुःख–दर्द व हर्षोल्लास अपनी प्रामाणिकता व विश्वसनीयता के साथ विद्यमान है।

सन्दर्भ–ग्रंथ–सूची

आधार–ग्रंथ

भगवान दास मोरवाल : बाबल तेरा देस में
राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, 110002
पहला संस्कारण 2004

: काला पहाड़
राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली–02
पहला संस्करण–1999

: अस्सी मॉडल उर्फ सूबेदार
प्रवीण प्रकाशन, नई दिल्ली–30
पहला संस्करण–1997

सहायक–ग्रंथ

1 अनिल जोशी (सं.) : पण्डून कौ कड़ा
कैलाश प्रकाशन, महावीर मार्ग
अलवर (राजस्थान), पहला संस्करण 1992

: मेवाती काव्य (दूहे एवं लोकगीत)
मेवात साहित्य प्रचार संस्थान, अलवर (राज.)
पहला संस्करण – 1996

2 आशिक खालोत : मेवाती लोककवि संवेदना और सृजन
प्रकाशन रचना, 57, नटाणीभवन, चांदपोल बाजार
जयपुर (राजस्थान)

3 आबिद हुसैन : भारत की राष्ट्रीय संस्कृति
नेशनल बुक ट्रस्ट इण्डिया, नई दिल्ली–16
संस्करण – 1987

4	कृष्णदेव उपाध्याय	:	लोकसाहित्य की भूमिका साहित्य भवन (प्रा.लि.), इलाहाबाद–3 द्वितीय संस्करण – 1970
5	तुलसीदास	:	श्रीरामचरित मानस गीताप्रेस गोरखपुर, संस्करण–2003
6	दिनेश्वर प्रसाद	:	लोक साहित्य और संस्कृति लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद–1 संस्करण – 1973
7	दुर्गादास बसु	:	भारत का संविधान : एक परिचय बाधवा एण्ड कम्पनी, नागपुर, संस्करण – 2001
8	पुखराज जैन, बी.एल. फड़िया	:	भारतीय शासन एवं राजनीति साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, 2004
9	महावीर अग्रवाल (सं.)	:	लोक संस्कृति : आयाम एवं परिप्रेक्ष्य श्री प्रकाशन, कसारीडीह दुर्ग, म.प्र.–01 संस्करण – 1993
10	महावीर प्रसाद शर्मा	:	मेवाती का उद्‌भव और विकास लोकभाषा प्रकाशन, छोटा बाजार, कोटपूतली (राज.) पहला संस्करण – 1976
11	मैनेजर पाण्डेय	:	साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका हरियाणा साहित्य अकादमी, चण्डीगढ़ (हरियाणा)
12	राजाराम भादू	:	मेवात में साम्प्रदायिकता : एक सांस्कृतिक अध्ययन शोधपत्र (मई 2005) श्री भगवान दास मोरवाल के सौजन्य से प्राप्त।
13	राम आहूजा	:	सामाजिक समस्याएँ रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर–04 संस्करण – 1999

14 रामदरस मिश्र : हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली–02
संस्करण – 2001

15 रैल्फ फॉक्स (अनु. वरोत्तम नागर) : उपन्यास और जनसमुदाय
परिकल्पना प्रकाशन, लखनऊ–20
प्रथम संस्करण – जनवरी 2006

16 विश्वनाथ त्रिपाठी : हिन्दी आलोचना
राजकमल प्रकाश्न, नई दिल्ली–02
संस्करण – 2001

17 साधना आर्य, निवेदिता मेनन, जिनी लोकनीता : नारीवादी राजनीति : संघर्ष एवं मुद्दे
हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय
दिल्ली विश्वविद्यालय

18 सिद्दीक अहमद मेव : मेवात एक खोज
प्रकाशन दोहा तालीम समीति, गुड़गाँव (हरियाणा)
पहला संस्करण – 1997

: मेवाती संस्कृति : अध्ययन एवं अवलोकन
प्रकाशन दोहा तालीम समीति, गुड़गाँव (हरियाण)
संस्करण – 1997

19 क्षमा शर्मा : स्त्रीत्ववादी विमर्श : समाज और साहित्य
राजकमल प्रकाशन, दिल्ली–02
संस्करण – 2003

20 त्रिलोचन पाण्डेय : लोकसाहित्य का अध्ययन
लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद–1
पहला संस्करण – 1978

पत्र–पत्रिकाएँ

1. (सं.) अखिलेश तद्भव, दिल्ली, 12 फरवरी, 2005
2. (सं.) गिरिराज किशोर अकार, कानपुर, मार्च, 2005
3. (सं.) गोपालराय (सं.) समीक्षा, अक्टू–दिसम्बर, 2004
4. (सं.) नानक चन्द, इन्द्रप्रस्थ भारती, दिल्ली, जनवरी–मार्च, 2004
5. (सं.) नामवर सिंह, आलोचना, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली–02, जुलाई–सितंबर, 2001, एवं सहस्राब्दी अंक
6. (सं.) मुँशी खाँ, चिराग–ए–मेवात, बखतल की चौकी, अलवर, नवम्बर, 1999
7. (सं.) रविन्द्र कालिया, वागर्थ, कोलकाता, सितम्बर 2005
8. (सं.) राजाराम भादू, दिशाबोध, जयपुर, जुलाई–अगस्त, 2003
9. (सं.) राजेन्द्र यादव, हंस, अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली, दिसम्बर, 1999
10. (सं.) शैलेन्द्र सागर, कथाक्रम, गोपालगंज (लखनऊ), जनवरी–मार्च, 2005
11. (सं.) सत्यप्रकाश मिश्र, माध्यम, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद, जनवरी–मार्च, 2001
12. (सं.) सुधीर विद्यार्थी, संदर्भ, बरेली (उ.प्र.), 2006
13. इण्डिया टुडे, 27 जून 2001 में प्रकाशित लेख, 'ऐसा इल्म कहाँ मिलेगा।'